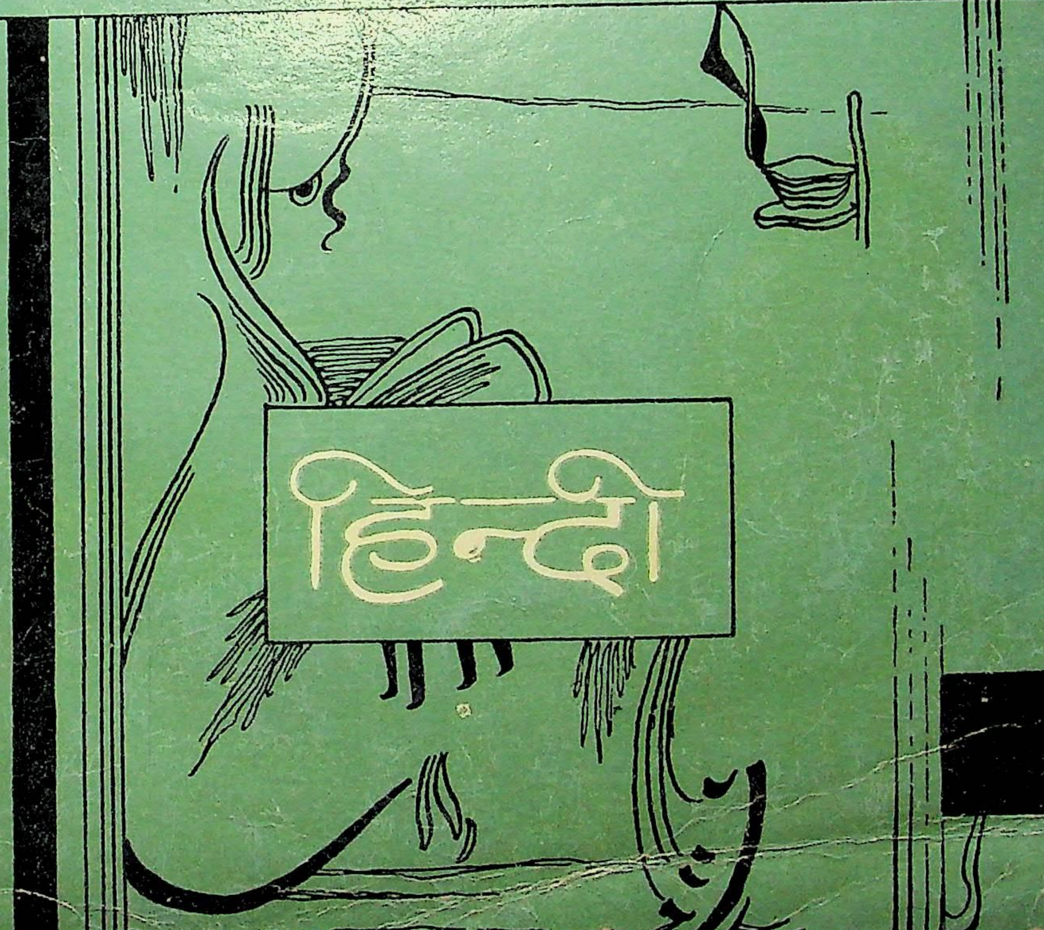
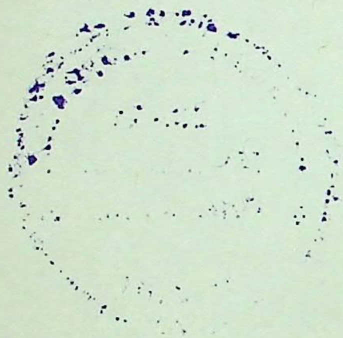
शीराज़ा



हिन्दी



शीराज़ा

वर्ष ७ अंक ३

(दिसम्बर १९७१)

संचालक
नीलाम्बरदेव शर्मा

सम्पादक
श्यामलाल शर्मा

ललितकला-संस्कृति तथा साहित्य अकाडमी ऐक्सचेंज रोड, जम्मू ।

वार्षिक शुल्क—८) रु०

एक प्रति २) रु०

सम्पादकीय पत्रव्यवहार

सम्पादक शीराज़ा हिन्दी
ललितकला-संस्कृति तथा साहित्य अकाडमी
ऐक्सचेंज रोड, जम्मू

फोन—५०४०

प्रो० नीलाम्बरदेव शर्मा सैक्रिटरी द्वारा जम्मूकश्मीर अकाडमी के लिये प्रकाशित तथा
अमर आर्ट प्रैस मोती बाजार में मुद्रित हुआ।

वर्ष ७ अंक ३

शीराजा हिन्दी वर्ष ७, अंक–३ (दिसम्बर १९७२)

अणुक्रमणिका

सम्पादकीय

(क) सत्य की प्रतिष्ठा के लिये शक्ति प्रयोग की अनिवार्यता

१९७१ का वर्ष भारत के लिये बड़ी गम्भीर और उग्र समस्यायें ले कर आया। पाकिस्तान ने भारत विरोधी नीति के आधार पर जैसे पश्चिम पाकिस्तान से हिन्दू तथा ईसाई जनता को खदेड़ कर उसे मुकम्मल तौर पर केवल मुस्लम प्रदेश बना दिया था उसी नोति का आचरण पूर्वी पाकिस्तान में भी शुरू कर दिया। पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या सात करोड़ से ऊपर थी जिसमें अढ़ाई करोड़ से अधिक हिन्दू तथा मुस्लिमेतर थे।

परन्तु पाकिस्तानी यलगार (आक्रमण) ने पिछले बीस वर्षों में इस मुस्लिमेतर जनसंख्या को अपनी धर्मान्धता, अत्याचार, और दमनचक्र से एक करोड़ की सीमा तक पहुँचा दिया। हर दस साल के बाद जन गणना में प्रत्येक देश में वृद्धि हुई परन्तु पूर्वी पाकिस्तान में मुस्लमानों के अतिरिक्त धर्मावलम्बियों की संख्या लुप्त होती गई। हैरानगी की बात थी कि पाकिस्तानी दमन चक्र की क्रूरता के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठाता था। भारत की धर्मनिरपेक्षता कमजोरी समझी जा रही थी। कहते हैं कि नरभक्षी को जब कोई आहार नहीं मिलता तो वह अपने परिवार के लोगों पर ही हाथ साफ करने लगता है। पाकिस्तान की भी यही स्थिति आ गई। शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने वाले मुस्लमानों पर भी दमन चक्र चलने लगा।

बीस वर्षों से दमन चक्र में पिस रहे तथा उग्र नोति से शोषित हो रहे लोगों ने उग्र आवाज उठाई। पाकिस्तान के सैनिक तानाशाह को दुनिया को दिखाने के लिये वहां चुनाव करवाने पड़े। पाकिस्तान की शोषण नीति तथा दमन चक्र

की विभीषिका में मुजीब-उल-रहमान के नेतृत्व में अवामी लीग ने १६६ स्थानों में से १६७ जीत कर केवल पूर्वी पाकिस्तान में ही नहीं समूचे पाकिस्तान में बहुमत प्राप्त कर लिया। याहिया खान को घोषणा करनी पड़ी कि शेख मुजीब पाकिस्तान के भावी प्रधान मन्त्री होंगे। शेख मुजीब तथा उनकी विजेता पार्टी ने पाकिस्तान का विधान भी बना लिया। पाकिस्तान के इस तीसरे विधान में पूर्वी भाग को अधिक स्वायत्तता देने की योजना थी। याहिया खान ने इसे विद्रोह का नाम देकर मुजीब साहब को गिरिफतार कर लिया और पूर्वी पाकिस्तान में टिक्का खान को भेजकर बंगालियों को मजा चखाने को कहा। टिक्का खान ने देश के इस भू-भाग में अत्याचार और कत्ल का वह बाजार गरम किया कि दस लाख के करीब जनता मौत के घाट उतार दी। एक करोड़ जन संख्या को देश से खदेड़ कर भारत भेज दिया। इस प्रकार पश्चिमी पाकिस्तान की धाक बंगालियों पर जमाने का प्रयत्न किया, पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या को पश्चिमी पाकिस्तान की जनसंख्या के समतल लाने का जतन किया, हिन्दू तथा ईसाइ जनता को बिल्कुल समाप्त करने की कोशिश की, भारत में शरणार्थियों की इतनी संख्या भेज कर भारत की आर्थिक दशा को छिन्न भिन्न करने का प्रयत्न किया, तथा भारत में धर्मनिरपेक्षता की नीति में बारूदी पलीता लगाने की कुचेष्टा की। भारत सरकार इस नर संहार और शरणार्थी समस्या की भीषणता से कराह उठी, और उसने सारे संसार को पुकारा कि इस आततायी पाकिस्तान को समझाओ, इस नर संसार को रोको, इन शरणार्थियों की सुध लो परन्तु संसार के देशों ने इसे अरण्य रोदन से अधिक महत्व नहीं दिया। लोक तन्त्र और आजादी का दम भरने वाली अमरीकी सरकार, जनकल्याण का नारा लगाने वाली चीन की कम्युनिस्ट सरकार इसे पाकिस्तान का घरेलू मामला कह कर पाकिस्तान की पीठ ठोंकने लगी। लोकतन्त्र आजादी और साम्यवाद के सुनहरो घोषों से संसार को मूर्ख बनाने वाले छद्म वेषा सौदागरों और तानाशाहों के इस पक्षपात पूर्ण व्यवहार से भारत के सरल और मासूम हृदय को ठेस पहुंची। परन्तु भारत सरकार ने असीम धैर्य और सत्य की विजय में निष्ठा रख कर संसार की शक्तियों से सम्पर्क स्थापित किया, उनको वास्तविक समस्या से अवगत कराया। स्वयं प्रधान मन्त्री ने संसार के सन्तुलन रखने वाले राष्ट्रों के पास जाकर उन्हें स्थिति की गम्भीरता से अवगत कराया। परन्तु सब से उपेक्षापूर्ण व्यवहार अमरीका के राष्ट्रपति निक्सन का रहा। उसने बंगाल की पीड़ा को समझने को ओर कान ही नहीं धरा।

वास्तविकता यह है और यथार्थ भो कि 'जिस तन लागे, वह तन जाने।'

किसी के घर लगी आग दूसरों को प्रकाशपुञ्ज ही मालूम होती है। जब अपने घर आंच महसूस हो तब व्यक्ति उसकी भीषणता से परिचित होता है।

पाकिस्तान ने पूर्वी पाकिस्तान में नर संहार तथा सैनिक आक्रमण के साथ ही भारत की पश्चिमी सीमा पर अपनी सेनाएं लाकर भारत की सुरक्षा के लिये खतरा उत्पन्न कर दिया। यह तो भारत के धैर्य की सीमा को ललकार थी। पाकिस्तान ने अपने गुप्त सहायकों की शह पर ३ दिसम्बर १९७१ को भारत पर हवाई हमला कर दिया। और जहाद का नारा लगा दिया। भारत सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान में चल रहे मुक्ति संग्राम को सहायता दी तथा बांगला देश को विधिवत मान्यता दी अपनी सुरक्षा के लिये वीर सेनाओं को आदेश दिया।

केवल बारह-तेरह दिनों में ही पाकिस्तानी पहलवान हांपने लगा और उसके पसीने छूटने लगे। हलाकू, चंगेज खां, नादिरशाह के अत्याचारों से स्फूर्ति और आदर्श लेने वाले गाजी समुद्र में गोते खाने लगे, हवाई युद्ध के हवण कुण्ड में पतिंगों की भान्ति जलने लगे और स्थल युद्ध में भूमि चाटने लगे और नाक रगड़ने लगे। यू. एन. ओ. में अमरीकी साहूकार की आसामियों ने अपने 'शाह' के इशारे पर भारत को युद्ध बन्द करने के लिये कहना उचित समझा। सोवियत संघ ने स्थिति की गम्भीरता और वास्तविकता समझायी परन्तु यथार्थ को मनवाने के लिये वीटो अधिकार का प्रयोग करके ही स्थिति को सम्भालना पड़ा। इतनी देर में ९३००० सशस्त्र पाकिस्तानी सैनिक मुजाहदों ने बंगला देश में घुटने टेक दिये और आत्म समर्पण करदिया। यू. एन. ओ. में पाकिस्तानी डेलीगेशन असमञ्जस की स्थिति में सन्तुलन खो बैठा। पाकिस्तान में सैनिक शासन पर जनता के रोष का प्रकोप बढ़ा। और याहिया खान तथा अन्य सैनिक जर्नैलों को निकाल दिया गया। परन्तु पाकिस्तान की स्थिति अभी आकाश से गिरकर खजूर में अटकने की हो गई है। याहिया के स्थान पर भुट्टो साहब आ गये हैं। यह व्यक्ति उग्ररूप में भारत विरोधी तथा अपने आपको चौदहवीं पन्द्रहवीं सदी के इस्लामी आक्रमणकारियों का उत्तराधिकारी मानता है। उसने भारत से प्रतिकार लेने की धमकी दी है। अमरीका उसे आश्वासन दे चुका मालूम देता है अब चीन के चोएनलाई से मिलने के बाद फिर टक्कर लेने की बात सोचेगा भविष्य के गर्भ में अनिश्चितता, असमञ्जस, और विक्षोभ ही भरा मालूम पड़ता हैं। परन्तु देश को आर्थिक संघर्ष का सामना करते हुए सेनाओं को आधुनिक अणुशस्त्रास्त्रों से भी लैस कर लेना चाहिये। और आततायी को यथोचित दण्ड देने के लिये सर्वदा संनद्ध रहना चाहिये।

(ख) धर्म निरपेक्षता की विजय

मुक्तिवाहिनी तथा भारतीय सेना की विजय ने तथा बांगला देश की स्थापना और नवनिर्माण ने पाकिस्तान के दो कौमों के सिद्धान्त के आधार को ही समाप्त कर दिया है। बांगलादेश के मुस्लमानों ने असंख्य कष्ट सहकर, धर्म नरपेक्षता का आधार लेकर दृढ़विश्वास और निष्ठा से पाकिस्तानी धर्मान्धता और अत्याचार का मुकाबला किया है। भारत ने अपनी परम्परा के अनुसार सत्य पर चलने वाले और कमजोर पक्ष की सहायता करके और पक्षपातपूर्ण तथा स्वार्थी राष्ट्रों का रोष मोल लेकर भी यश और प्रशंसा प्राप्त की है। संसार में एक नये देश का निर्माण हुआ है। बहुसंख्य मुस्लिम प्रदेश होते हुए भी बांगला देश धर्मनिरपेक्ष राज्य होगा। धर्म निरपेक्षता के आधार पर यह नवोदित राष्ट्र भारत का मित्र तथा सहयोगी राष्ट्र होगा। पाकिस्तानी अत्याचारों से पीड़ित, सेना से ध्वंसित, आर्थिक स्थिति की शोचनीयता से आक्रान्त यह राष्ट्र कुछ समय के लिये भारत के लिये अवश्य एक बोझ सिद्ध होगा परन्तु इस के दूररस परिणाम नैतिक दृष्टि तथा आर्थिक दृष्टि से भारत के पोषक तत्व सिद्ध होंगे। इसलिये हमें कष्ट सह कर भी बांगला देश की सहायता करनी चाहिये तथा इसे अपने पैरों खड़ा होने का बल प्रदान करना चाहिये।

आज का सांइस प्रधान-युग जब चान्द सितारों पर मानव के कदम जमा रहा है। तथा साइंस के माध्यम से मानव के लिये उसने उन्नति के सब रास्ते खोल दिये हैं आज के ऐसे जमाने में धार्मिक युद्ध चलाने, जहाद की धमकियां देने चंगेज हलाकू और नादिर शाह के उदाहरणों से स्फूर्ति लेकर अपने हमसायों से बैर मोल लेने, समाज में धर्म के आधार पर वर्गों में द्वेष और शत्रुता की भावना भड़काने की बातें करना और सोचना व्यक्ति की अल्पज्ञता, संकीर्णता और रूढ़िवादिता का निन्दनीय प्रदर्शन है। राष्ट्र में शिक्षा का प्रसार, गरीबी को हटाने के यत्न, जमीन के सुधार, नये उद्योगों का निर्माण, आदि कितने महत्वपूर्ण काम करने के लिये पड़े हैं उनको छोड़ कर आक्रमण करने, मुस्लमानों को जहाद के लिये उकसाने और उनको युद्ध की भट्टी में झोंकने की बातें सभ्यता के आगमन से पहले की बातें हैं। पाकिस्तानी शासकों को निरर्थक बातों में समय नष्ट करके जनता को हमेशा युद्धज्वर नहीं चढ़ाये रखना चाहिये। संसार में सांईस की प्रगति, संस्कृति, कला साहित्य का आदान-प्रदान, सह-अस्तित्व, भ्रातृभाव, समाज कल्याण, प्रगतिशीलता आदि की शब्दावली भी सीखनी और अपनी जनता को सिखानी चाहिये।

———

(ग) भारतरत्न इन्दिरा प्रियदर्शिनी

भारतभूमि वीर प्रसु है। भारत के वीर पुत्रों और वीर पुत्रियों का इतिहास बड़ा विशद और विशाल है। हमारी वीर बालाओं ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर्श स्थापित किये हैं देवासुर सग्रामों में हताश तथा पराजित देवों की सहायतार्थ रणचण्डी दुर्गा शक्ति आदि रूपों में असुरों का संहार कर मातृशक्ति के मान की स्थापना की। सती अनसूया, गार्गी, मैत्रेयी, सीता धर्मपालन और नैतिक-आचरण की दृष्टि से पूज्या हैं। दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, अहल्या बाई ने अपने सीमित क्षेत्रों में अपने शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया है। साहित्य, संगीत और कला के क्षेत्र में तो स्त्री का जन्मसिद्ध अधिकार प्रसिद्ध ही है। राजनीति के क्षेत्र में सरोजिनी नायडू और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित ने भारतीय स्त्री का मान ऊंचा किया है। परन्तु आज हमारी प्रधान मन्त्री प्रिय दर्शिनी इन्दिरा जी ने संसार के राजनीतिक क्षेत्र में अपनी बुद्धिमत्ता, उपयुक्त समय पर उपयुक्त पग उठाने की दक्षता, धीरता, सब का सहयोग प्राप्त करने की क्षमता, दुष्ट को दण्ड देने की प्रभुसत्ता तथा पक्षपातपूर्ण सबल राष्ट्रों को उचित उत्तर देने की योग्यता से संसार के राष्ट्रों में भारत का मान बढ़ाया है। मस्तक ऊंचा किया है। इन्दिरा जी ने अपनी दृढ़निष्ठा और विश्वास-शक्ति से राष्ट्र को एकता सामर्थ्य और बल प्रदान किया है। राष्ट्रपति ने 'भारत रत्न' का सर्वोन्च मान प्रदान करके इन्दिरा जी की योग्यता की प्रतिष्ठा की है। हम इन्दिरा जी को बधाई देते हैं और यह सिद्धान्त स्मरण कराते हैं कि वीर भोग्या वसुन्धरा सदा वीर भोग्या रहेगी। भारत को सब प्रकार के शक्ति सम्पादन में दक्ष रहना होगा जिस में अणुशक्ति का सञ्चय आज के युग की परमावश्यकता है।

(घ) वयं पञ्चाधिकं शतम्

भारत की विशालता और विविधता में राष्ट्रीय एकता की अद्भुत क्षमता है। शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में जिस प्रकार रक्त प्रवाह एकता तथा सजीवता का द्योतक होता है इसी प्रकार हमारी विविधता में भारतीयता हमारी एकता का रक्त प्रवाह है। हमारे राष्ट्र में कितने धर्म, सम्प्रदाय, मतमतान्तर हैं परस्पर विरोधी भी लगते हैं, तनाव भी उत्पन्न होते हैं परन्तु राष्ट्र पर विपत्ति आये तो सब भारतीय एक जान होकर संकट का सामना करते हैं। पाण्डवों के वनवास की घटना हमारे राष्ट्र धर्म की जीवित मिसाल है। दुर्योधन ने पाण्डवों के

अधिकार छीन, उन्हें पददलित कर बारह वर्षों के लिये वनों में भेज दिया था। और उस विपत्ति के समय में वनों में भी पाण्डवों को तंग करता रहता था। उन्हीं दिनों की बात है। एक दिन दुर्योधन का वन में किसी गंधर्व से सामना हो गया। गन्धर्व ने दुर्योधन का मान मर्दन किया और उसे बन्दी बना लिया। गन्धर्व सेना के सामने कौरव दल हार गया। इसकी सूचना युधिष्ठर जी को मिली। उन्हों ने तुरन्त भीम और अर्जुन को दुर्योधन की सहायता के लिये जाने को कहा। भीम ने दुर्योधन के व्यवहार का स्मरण कराया तो युधिष्ठर जी ने कहा कि परस्पर लड़ने झगड़ने के लिये हम पाण्डव पांच और कौरव सौ हैं। परन्तु शत्रु के मुकाबले में हम एक सौ पांच हैं। "वयं पञ्चाधिकं शतम्।" इस सिद्धान्त के पालन तथा आचरण में ही हमारा कल्याण है। हम में लाख मत भेद हों परन्तु राष्ट्र की सुरक्षा के लिये हम एक हैं। इसी राष्ट्रीय एकता में भारत का कल्याण है।

(ङ) अपने पराये की पहचान

वर्तमान संघर्ष के दौरान में हमें अपना पराया देखने और परखने का बड़ा सुन्दर अवसर मिला है। इस व्यवहार के आधार पर हमें अन्तर्मुख होकर जायजा लेना चाहिये (जांच पड़ताल करनी चाहिये) गम्भीर विचार करना चाहिये और भविष्य के लिये कार्यक्रम निश्चित करना चाहिये। हमने देखा है कि केवल मात्र आदर्शवाद ऐसा शुद्ध सोना होता है जिसकी सब कदर करते हैं, मूल्यवान भी समझते हैं, परन्तु जिसके आभूषण नहीं बन सकते। भूषण बनाने के लिये अपने राष्ट्रहित का 'धातु' मिलाना ही पड़ता है। अमरीका के राष्ट्रपति का अध्यक्षीय भाषण पढ़ो तो लगता है मानो ईसा की रूह राष्ट्रपति में प्रवेश कर गई है। विश्व शान्ति, सत्य, सह अस्तित्व और आदर्शवाद के उपदेशों से भरा होता है परन्तु संसार का यही एक मात्र राष्ट्र है जिसने शत्रु से वदला लेने के लिये अणुबम का प्रयोग करके हिरोशिमा और नागासाकी को भस्मसात कर दिया। वीतनाम में वर्षों बमवर्षा करके जिसने वहां के लोगों का जीवन ही युद्धमय और नारकीय बना दिया है। अमरीका एक बड़ा भारी जमींदार और साहुकार है जो संसार के छोटे २ राष्ट्रों को खेती वाड़ी, शिक्षा के प्रचार प्रसार, उद्योग-दस्तकारी के उद्धार के नाम पर आर्थिक सहायता देता है और फिर सैनिक सहायता के नाम पर उनको पूर्णरूप से अपने ऊपर आश्रित कर लेता है। अमरीकी प्रैजिडैण्ट उसी जमींदार और साहुकार की भावना लिये प्रत्येक राष्ट्र से यही आशा करता है कि वह

उसकी हां में हां मिलाये और हर समय दस्तबस्ता (हाथजोड़े) उसके सामने खड़ा रहे। किसी के स्वाभिमान की बात उसे अवज्ञा प्रतीत होती है। उसका अभिमान यही चाहता है कि वह चाहे कुछ (सही या गलत) भी सोचे उसकी बात ही मानी जानी चाहिए। पाकिस्तान ने पूर्वीभाग बंगाल में दमनचक्र चलाया। और जब जनता ने शेख मुजीब-उल-रहमान के पथ प्रदर्शन में विरोध प्रकट किया तो सैनिक शासन इन मच्छरों' को मसल डालने के लिये कटिबद्ध हो गया। जिस समय निरीह जनता का "कत्ले आम" हो रहा था लाखों व्यक्तियों को देशबदर किया जा रहा था, भारतवर्ष इस अनपेक्षित बोझ से पिस रहा था और कराह रहा था तो अमरीकन राष्ट्रपति इसे पाकिस्तान का घरेलू मसला कह कर भारत की मुसीबत पर हंस रहा था। पाकिस्तान इस शह का लाभ उठाकर भारत की सीमाओं पर अपनी सेनाएं ले आया। जब भारत ने अपनी सेनाएं सुरक्षा के लिये सीमा पर लाईं और उधर मुक्तिवाहिनी ने मातृभूमि और स्वाभिमान की रक्षा के लिये प्रतिकार का बीड़ा उठाया तब पाकिस्तान को लेने के देने पड़ गये। अमरीकी प्रैजिडैण्ट भारत पर बौखला उठा। जब पाकिस्तान की सेना आत्म समर्पण करने लगी तो सुरक्षा कौंसल और जनरल कौंसिल में भारत पर जोर डाल कर जंग बन्द करने और फौजें वापिस बुलाने के प्रस्ताव पास कराने के लिये एड़ी चोटो का पसीना बहा दिया। भारत को आतंकित करने के लिये अणुशक्ति के शस्त्रास्त्रों से सज्जित तथा आक्रामक वायुयानों से सन्नद्ध समुद्री-बेड़ा (7th fleet) बंगाल की खाड़ी में भेज दिया। भला हो स्थिति की वास्तविकता और गम्भीरता को समझ कर भारतका साथ देने वाले सोवियत संघ का जिसने दो बार वीटो के अधिकार का प्रयोग करके अमरीका को दुःसाहस करने और आतंकित करने से रोका। इंगलैण्ड और फ्रांस ने वास्तविकता को समझा और अमरीकी षड़यन्त्र में सम्मिलित नहीं हुए। लंका ने जो भारत का एहसान नहीं भुला सकता, भारत के विरुद्ध वोट दिया। संसार के एक मात्र हिन्दू राष्ट्र नेपाल ने भारत के हक में वोट नहीं दिया और निष्पक्ष रहा। यह स्थितियां हैं जिनपर हमें गम्भीरता से सोचना है। और अपने पराये की पहचान करनी है। संसार का यह अटल सिद्धान्त है कि लोग शक्ति शाली के साथ मित्रता करना पसन्द करते हैं। कमज़ोर के साथ कोई हाथ नहीं मिलाता। इसलिये भारत को शस्त्रास्त्र सग्रह और निर्माण के पक्ष में अधिक सतर्क और चिन्तित रहना चाहिये। हम जनसंख्या में संसार में दूसरे नम्बर पर हैं। हम समर्थ और सबल होकर संसार का शान्ति स्थापना में सक्रिय योग दे सकते हैं। हमें इस सत्य से मुंह नहीं मोड़ना चाहिये।

———

(च) इक जन जावे दूजा आवे जोत सदा ही जले

संसार ऐसा उपवन है जहां रंगारंग के फूल खिलते हैं और समय को रंगीन, मधुर और सरस बनाकर मुरझा जाते हैं परन्तु उनकी गन्ध मस्तिष्क में छाई रहती है। रियासत जम्मू कश्मीर के दिवंगत मुख्यमन्त्री श्री गुलाम मुहम्मद सादिक अपनी उदार भावना और कर्तव्य निष्ठा के लिये समादृत होते थे। रियासत जम्मू कश्मीर में जनजागृति की लहर को उद्वेलित करने वाले तथा साम्प्रदायिकता के घेरे से ऊंचे उठकर सामन्तशाही से लोहा लेने वाले एक महारथी थे। आप एक वरिष्ठ घराने से सम्बन्ध रखते थे इसलिये "प्यादे से फरजी भयो तिरछो तिरछो जात" वाली स्थिति इनके व्यवहार में नहीं आई। आप ने शेख अब्दुल्ला को मुक्त करके खुली छुट्टी दी कि जो कुछ वह कहना चाहते हैं कहें। शेख अब्दुल्ला की साम्प्रदायिकता का उन्होंने राजनीतिक स्तर पर मुकाबला किया। शेख साहब की बातें एक पक्षीय और साम्प्रदायिक तथा संकीर्ण और पाकिस्तान को लाभ पहुँचाने वाली थीं। लोगों ने आहिस्ता २ उस दृष्टिकोण की निरर्थकता को समझना शुरू किया। जब शेख अब्दुल्ला ने बंगलादेश के नर संहार और वहां पर हो रहे अमानुषिक अत्याचारों के प्रति चुप्पी साधी तो स्वर्गीय सादक साहब ने इस अमानवीय कुकृत्य के विरोध में आवाज बुलन्द की और बंगला देश के पक्ष का समर्थन किया। बीमारी की स्थिति में भी बंगला देश के विषय में उनके उद्गार अत्याचार पीड़ित व्यक्तियों के व्रणों को सहलाते रहे। ११ दिसम्बर ७१ को चण्डी गढ़ नर्सिंग होम में उनका देहान्त हो गया। सादक साहब एक सप्ताह और जीवित रहते तो बंगला देश की मुक्ति और भारत की विजय अपनी आंखों से देखते। उनको प्रसन्नता होती कि जिस धर्म निरपेक्षता की ज्योति को जलाये रखने का प्रयत्न उन्होंने आजीवन किया उस में बंगला देश की जनता ने पूर्ण सफलता प्राप्त कर दिखाई। कश्मीर और बंगला देश ने हिन्दू मुस्लिम दो कौमों के सिद्धान्त को ठुकरा कर पाकिस्तान की स्थापना का आधार ही छिन्न भिन्न कर दिया।

कश्मीर के नये मुख्य मन्त्री श्री सैय्यद मीर कासिम उसी भट्ठी से तप कर निकले हैं जिसमें सादक साहब कुन्दन होकर निकले थे। हम नये मुख्य मन्त्री जी का स्वागत करते हैं और अपेक्षा करते हैं कि उनकी कीर्ति स्वर्गीय सादक साहब की महिमा में सोने में सुगन्धि का सम्मिश्रण करे।

यह कामुकता की ओर बढ़ रही प्रवृत्ति हमें कहां ले जायेगी ?

—स० रामकृष्णन

कुछ दिन हुए मुझे एक पत्र पढ़ने को प्राप्त हुआ। यह एक 'व्यथित हिन्दू हृदय' ने एक धर्मोपदेशक स्वामी जो को लिखा हुआ था। मुझे महसूस हुआ कि पत्र लिखने वाले ने अपनी वास्तविक व्यथा और विचारणीय चिन्ता उस पत्र में उण्डेल दी है और उसका उपाय ढूण्डने का प्रयत्न किया है। मैंने वह पत्र अपने कुछ मित्रों को दिखाया। उन्होंने भी महसूस किया कि पत्र में जो कुछ लिखा है उसमें सचाई है, व्यथा है उपाय ढूण्डने का प्रयास है। पाठक मुझे क्षमा करें मैं वह पत्र विस्तार से उनके सामने उद्धृत कर रहा हूं। पत्र लेखक ने लिखा है :—

श्रद्धेय स्वामी जी,

सांसारिक दृष्टि से मैं एक स्मृद्ध, सन्तुष्ट और प्रसन्न व्यक्ति हूँ। एक सुन्दर परिवार है, अच्छी नौकरी है, पर्याप्त वेतन है, नाम है, ख्याति है, पढ़ा लिखा हूँ, सुन्दर स्वास्थ्य का स्वामी हूं। धार्मिक दृष्टि से भी मैं सन्तुष्ट व्यक्त हूं, लालची नहीं हूं, क्रोध नहीं करता, दया भावना रखता हूं, मानव मात्र से प्यार करता हूँ, मुहताज़ों की सहायता करता हूं, अभिमान नहीं करता, खाऊ नहीं, पेटू नहीं, शराब नहीं पीता, सिग्रेट भी नहीं पीता, अहंवादी भी नहीं हूँ, चोर बाजारी नहीं करता, किसी को धोका नहीं देता, नाम प्रसिद्धि की लालसा

भी नहीं, भगवान से प्यार करता हूँ, देश से प्यार करता हूँ। ऊपर के वर्णन से डींग मारता प्रतीत होता हूँगा। परन्तु मैं ऐसा नहीं कर रहा। मैंने यह सब भगवान की कृपा से प्राप्त किया है। मैं ने जीवन अत्यन्त दयनीय स्थिति से प्रारम्भ किया था। मैं अभी शिशु ही था कि माता का स्वर्गवास हो गया। पिता जी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उनका स्वास्थ्य गिर चुका था, मैं उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सफल हुआ। प्रेम प्रदान करने वाली पत्नी प्राप्त हुई। प्रिय सन्तान का सुख सौभाग्य मिला। अच्छी नौकरी मिल गई, कुछ प्रयत्न करने पर तथा भगवान की कृपा से देश-विदेश में घूमने के खूब अवसर भी मिले।

यह सब कुछ कहने के बाद अब मैं वह बात स्वीकार करता हूं कि चुभन कहां है। ऊपर से मैं बिल्कुल शान्त स्थिर और गम्भीर हूँ परन्तु इस शान्तता, गम्भीरता और स्थिरता में उग्र क्षोभ उत्पन्न होता है। वह क्षोभ उत्पन्न करने वाली एक ही बात है। इस सार संसार में, और जहां कहीं भी मैं जाता केवल एक बात ही मन में क्षोभ उत्पन्न करती है। मैं ने शारीरिकतया कोई पाप नहीं किया। परन्तु केवल एक मात्र मानसिक पाप का अपराधी हूँ और वह मानसिक अपराध है कि प्रत्येक सुन्दर नारी को देखकर अपनाने की चाह पैदा होती है। मैं बड़ा हैरान होता हूँ कि पचास से ऊपर की अवस्था का हो जाने के बाद भी यह काम भावना मेरा पिण्ड क्यों नहीं छोड़ती।

फ्रायड महोदय और अन्य आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि यह तो स्वाभाविक ही है, ऐसा होता ही है, होना ही चाहिये। परन्तु मुझे समझ नहीं आती कि क्यों ऐसा होता है, क्यों ऐसा होना चाहिये। यदि (भगवान की कृपा से) मैं क्रोध पर काबू पा सकता हूँ, लालच को दबा सकता हूं, अभिमान को जीत चुका हूँ, अहंकार को परास्त कर सका हूं तो यह एक मात्र भावना (काम भावना) अजेय क्यों है? सारे अच्छे संस्कार, स्वाध्याय, सत्संग, पूजा, ध्यान और जप एकान्त और मुक्त समय में इस वासना को मानस पट से धो नहीं सके हैं। गत ३० वर्ष इस भावना की उग्रता को क्षीण करने में सफल नहीं हो सके हैं। बाकी सब बातों में भारी परिवर्तन आया है। परन्तु केवल इस (काम) भावना में कोई परिवर्तन नहीं आया। यह नहीं बदली है।

मनुष्य के लिये स्त्री सौन्दर्य कोई अप्राकृतिक वस्तु नहीं है। यह एक वास्तविकता है निश्चित बात है कि प्रत्येक सुन्दर और अच्छे नक़्शो निगार

वाली स्त्री जब मेरी आंखों के सामने से गुजरतो है तो मेरा मन विचलित हो जाता है। चलाय मान हो जाता है। फिर वह स्थान भले मन्दिर हो क्यों न हो, आपका सत्संग मण्डल ही क्यों न हो। मन विचलित हो जाता है। सिनेमा-हाल, थियेटर, समुन्दर का किनारा, सिनेमाहाल की बाल्कनी या और किसो फैशनपरस्ती के स्थान की तो बात ही जाने दीजिये। वे स्थान तो मन को विचलित करने तथा मानसिक स्थिरता को डिगाने के लिये कुख्यात हैं ही।

कई बार तो मन करता है कि सूरदास जी की भान्ति ये आंखें फोड़ डालूं क्योंकि लगता है कि यदि आंखें ही न हों तो ये काम वासना या मानसिक भाव उत्पन्न ही नहीं होंगे। इन आंखों द्वारा प्रभाव मन पर पड़ता है और ये पापमय विचार मन को गन्दा करते हैं।

जब मैं ऐसे कमरे में होता हूँ जहां स्त्रियां नहीं होतीं तो मेरा मन साधारणतया शान्त रहता है। परन्तु आज के नवीनयुग में स्त्रियों के दर्शनों से बच सकना असम्भव है। जीवन में कदम कदम पर उनसे भेण्ट होती है। सड़कों पर बसों में, गाड़ियों में, दफतरों में, लिफ्टों में, कारखानों में, रंगशालाओं में, समुन्दर के किनारे. चहलकदमी में उनसे सम्पर्क आता है। इतना ही नहीं मन्दिरों, आश्रमों और ज्ञानयज्ञों में भी उनसे सम्पर्क आता है। जब तक उनका शरीर वस्त्रों से ढका रहता है मेरे मन में कोई वासना पूर्ण विचार नहीं उठता। परन्तु जब तंग चोलियों और स्कर्टों तथा साढ़ियों से उनके अंगों का प्रदर्शन देखता हूं तो वासनापूर्ण विचार एक दम आविर्भूत होते है। अब तो यह तंग और चुस्त वस्त्रों की प्रथा अश्लोलता की सीमा को छूने लगी है। अनावृत पेट, अधनंगी छातियां, खुले कन्धे, नंगी कमरें और पीठ, कामुकता उभारने वाले नितम्ब और छातियां, रंगे हुए होंठ और पक्ष्म—ये सब वातावरण एक दम मेरे मन को महत्ता को उखाड़ फेंकता है इसमें कोई शक नहीं कि यह सब कुछ हकीकत नहीं है परन्तु यह मन को बड़े वेग से झकोरता है। मेरी वासना तृप्त नहीं होती इस का मुझे क्रोध नहीं और इस से मन में एक व्यथा और रंज उत्पन्न होते हैं और एक भयंकर स्वप्न के बाद ही इनसे पिण्ड छूटता है। मुझे समझ नहीं आती कि आधुनिक नारी इस प्रकार कामुकता उभारने वाले वस्त्र क्यों पहनती है।

स्वामी जी ! यदि आप इस ओर पहले कदम उठायें और स्त्रियों को उपदेश करें कि वे वस्त्र मर्यादा की रक्षा करते हुए पहना करें। कामुकता उभारने वाले ढंग से न पहनें। आखिर इस वेशभूषा से उनको मिलता क्या है ? मेरे बहुत से

मित्रों ने मुझे बताया है कि वर्तमान भारतीय नारियां विदेशी नारियों की तुलना में अधिक भड़कीले वस्त्र पहनती हैं। सिनेमा, विज्ञापन पत्र तथा सौन्दर्य प्रतियोगिता के बड़े २ पोस्टर इस ढंग से स्त्री के अंगों का प्रदर्शन करते हैं कि कोई आप सदृश पहुंचा हुआ योगी ही इन से बचपाये वरन् प्रत्येक व्यक्ति इस काम वासना और व्यभिचार वृत्ति का शिकार हो जाये गा। मुझे तो यही एकमात्र भयंकर खतरा दिखाई देता है। मेरी आध्यात्मिक प्रगति में एक जबरदस्त विक्षेप है।

एक बात निश्चित है कि जब मैं किन्हीं साधारण स्त्रियों को देखता हूं जिन्हों ने सिर से पांव तक सादे कपड़े पहने होते हैं। तंग और चुस्त कपड़ों से शरीर को जकड़ा नहीं होता और श्रृंगार के नाम पर माथे पर केवल बिन्दी लगाई होती है। तो मेरा मन विचलित नहीं होता। ऐसी स्त्रियों को देखकर श्रद्धा उत्पन्न होती है। लगता है जैसे अपनी माता, बहन, पुत्री, या भ्रातृजाया हो। परन्तु बाकी कामुकता उभारने वाले कपड़े पहनने वाली स्त्रियां मेरे मन में काम विकार उत्पन्न करती हैं।

आपकी अत्यन्त कृपा होगी यदि आप इन स्त्रियों के मन में परिवर्तन लादें। इनको कहें कि यह समाज में कामविकार का वातावरण न फैलायें।

आप इन अश्लील वस्त्रों के विरुद्ध जरूर उपदेश करें। एक बार गान्धी जी ने अश्लील वस्त्रों के विरुद्ध कहा था। डा० सर्वपल्ली राधकृष्णन (भूतपूर्व राष्ट्रपति) जी ने भी एक बार आवाज उठाई थी। परन्तु वह तो अरण्यरोदन ही सिद्ध हुआ। उलटे नग्नता का प्रचार बढ़ता जा रहा है। रक्तबीज का अस्तित्व बढ़ता जा रहा है। इन के चंगुल से हमें बचाइये। यह आपका बड़ा भारी पुण्य कार्य होगा।

विनीत :
एक व्यथित हिन्दू हृदय

१. प्रबल अन्तर्धारा :

क्या हम सिनेमा, विज्ञापन पोस्टर और सौन्दर्य प्रतियोगिताओं आदि के द्वारा कामुकता के बहाव में बहे जा रहे हैं जैसा कि व्यथित हिन्दू हृदय ने अपने

दुःख के उद्गार प्रकट किये हैं ? क्या हम कामुकता के पतन के गढ़े में गिरते जा रहे हैं ? हम से वे लोग जो इस प्रवृत्ति को सह लेते हैं, या वे लोग जो अज्ञान या उपेक्षा के कारण, जाने या अनजाने इसप्रवृत्ति को बढ़ावा देते हैं, इस बात को महसूस नहीं करते कि यह अन्धाधुन्द कामुकता को ओर बढ़ रही प्रवृत्ति हमें कहां जा पटके गी ? हम इस तथ्य से आंखें क्यों मून्द लेते हैं कि यह कामुकता हमारे सदाचार, पत्नी तथा पतिपरायणता, मातृत्व तथा पितृत्व की भावना के मूल्यों को गिरायेगी। पवित्र विवाह और परिवार के संस्कार को कलुषित करेगी और हमारी मानसिक तथा आध्यात्मिक गिरावट का कारण बनेगी तथा परिणामस्वरूप समाज में अफरातफरी और स्वेच्छाचार तथा अनाचार फैल जायेंगे।

आज तो जीवन यापन के स्तर को ऊंचा उठाने के लिये सब ओर प्रगतिशोल कदम उठाये जा रहे हैं। ये उचित और आवश्यक भी हैं। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि इसके साथ ही जीवन के स्तर को ऊंचा उठाने की ओर बिलकुल लापर्वाही अपनाई जा रही है। आजकल की शिक्षापद्धति ऐसी हो गई है कि इस क्षेत्र में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को संशय की दृष्टि से देखा जाता है। इन मूल्यों को 'प्रतिवादी' तथा 'पुरातनवादी' कहा जाता है। ऐसा वातावरण निर्माण किया जा रहा है कि जिसमें केवल भौतिकवाद को ही प्रधानता दी जाती है। और हर स्तर पर जीवन का मजा कैसे लूटना है, और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया जा रहा है कि बहुमत को अधिक से अधिक आनन्द और सुख सुविधा कैसे दी जा सकती है। ऐसे वातावरण को देख कर रोमहर्ष हो जाता है कि हमारी इस प्राचोन मातृभूमि और पुण्यभूमि का क्या बनेगा।

यह कहना वृथा नहीं होगा कि इस बेलगाम स्वेच्छाचार से यद्यपि यह जानबूझ कर शायद नहीं किया जा रहा व्यक्तिगत आत्मतुष्टि तथा वासनापूर्ति की गान शनैः शनैः व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के लिये घातक सिद्ध होगी और उसे ले डूबेगी। तीव्रगति से फैल रहा इस सड़ांध की अतिशय बदबू व्यक्ति की मान्यता को प्रभावित करेगी, कलुषित करेगी। और उसके मानसिक, नैतिक और सामाजिक चिन्तन को दूषित करेगी। ऐसे कलुषित व्यक्ति अच्छे नागरिकों का एक अच्छा परिवार निर्माण करने में न केवल असमर्थ हो जायेंगे वे परिवार के नियमबद्ध जीवन को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। क्योंकि उनमें स्वार्थ परायणता की तथा वासनापूर्ति की अनिवार्य भावना प्रबल होगी। इस प्रकार परिवार के ईश्वर प्रदत्त गुणों का जैसे निःस्वार्थ भावना, प्रेम, सहिष्णुता, मिल-

वर्तन और दूसरों के भावों के प्रति सद्भावना आदि गुणों का ह्रास हो जायेगा। इस प्रकार ये नींवें जिनपर सन्तुलित और शान्त परिवार का प्रासाद खड़ा होता है, ढह जायेंगी।

जब इस प्रकार की जीवन पद्धति एक परिवार में आ घुसती है तो यह छूत की भान्ति परिवार में एक सदस्य से दूसरे सदस्य तक तथा उस परिवार से सारे समाज में फैलती है। इसके फैलने में समय कम भी लग सकता है, अधिक भी। फिर यह ज़हर बड़ी परिधि में फैलने लगता है और राष्ट्र की अन्तड़ियों तक जा पहुंचता है। और जब यह नैतिक पतन प्रारम्भ होता है तो राष्ट्र का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। उसका भविष्य समाप्त हो जाता है। राष्ट्र आहिस्ता २ मरने लगता है। यह मरण यन्त्रणा बड़ी दुखदायी होती है, राष्ट्र धीरे २ समाप्त हो जाता है।

२. वर्तमान में अत्याचार का प्रतिरोध करने की भावना कम हो रही है :

पिछले कुछ दशकों में यह विशेष परिवर्तन हुआ है कि जीवन के सब पहलू जिनमें साहित्य और संस्कृति भी सम्मिलित है पानी से कटते तट की भान्ति संक्षरित होते जा रहे हैं। और काम वासना की तृप्ति का लावण्य जीवन को लवण की भान्ति संक्षरित करता जा रहा है। इसकी कोई विशेष चिन्ता नहीं की जा रही है। साहित्य का ही उदाहरण देखिये। आज साहित्य के बहुत से विषयों प्रसंगों और दृश्यों का केन्द्र नारी है। उस अश्लील साहित्य की तो बात ही जाने दीजिये जिसमें नग्न कामुकता और दूषित पुस्तकों की भरमार हो रही है।

बहुत सी पत्र पत्रिकाओं में 'जनता की रुचि को तुष्ट करने की भावना' की ओट में निर्लज्ज होड़ लगी हुई है। वे अपहरण, लोकनिन्दा, तलाक और मन बहलाने वाले छोकरे छोकरियों की चटपटी कहानियां और अश्लील वर्णनों की खैरात बांटती रहती हैं। इन 'जनप्रिय' पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठों पर स्त्रियों के कामोद्दीपक और सम्मोहक चित्र वासना को प्रज्वलित करने वाला भावभंगिमा वाले चेहरों का प्रदर्शन होता है। और ऐसा प्रकाशन करना उनका नियम ही हो गया है।

फोटोग्राफी, चित्रकला, मूर्तिकला और अन्य दृश्य कलाओं में भी नारी रूप के कामुक प्रदर्शन को बढ़ावा मिल रहा है। आस्कर वाइल्ड 'कला कला के लिये'

सिद्धान्त के पोषक्र रहे हैं। वे भी यह कहने पर बाध्य हुए थे कि कला का उद्देश्य मन के अन्तरतम के दिव्य तारों को झंकृत करना है। तभी आत्मा का संगीत सुनाई देता है। संगीत और नृत्य जिनके विषय में कहा जाता है कि ये व्यक्ति को भगवान से मिलाते हैं और जो भगवान की सर्वोत्तम भेण्ट हैं उन में भी सांसारिकता, विदेशीयता और कामुकता उग्ररूप से आ रहो है। यही स्थिति मन बहलाव के साधनों, नाटकों और चल चित्रों आदि की भी है। इन में भी अधिक से अधिक स्त्री को प्रधान बनाया जा रहा है और एक निश्चित उद्देश्य से उनमें कामुकता का समावेश किया जाता है ताकि अधिक से अधिक जनता उनको देखने के लिये आये और उनको खूब आमदनी हो।

आज की विज्ञापन पद्धति में भी इस कामुकता के प्रदर्शन को आवश्यक अंग के रूप में प्रश्रय मिल गया है। वर्तमान समय में कुछ ऐसे चित्ताकर्षक विज्ञापन देखने में आये हैं जिनमें नारी की शरीर रचना उसका चेहरा, हाथ या टांग या किसी और अंग का प्रदर्शन जरूर होता है। विक्रय वस्तु चोली, शृंगार प्रसाधन, वस्त्राभूषण, गन्धहारक सुगन्धियां, औषधियां, बिजली के पंखे, स्नानगृह या शौचघर का सामान, इमारती सामान, मेजकुरसियां, फिटिंग का सामान, और रेडियो इत्यादि चाहे कुछ भी हो।

कई साइंसें भी जैसे मनोविज्ञान, समाज शास्त्र, मानव शास्त्र आदि इस सर्वव्यापी कामुकता से अछूती नहीं रह सकी हैं।

कुछ तथाकथित प्रगतिशील देशों में इस नारी सम्मोहन ने जन जीवन और राजनैतिक जीवन में भी महत्वपूर्ण भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है। १९६२ के आम चुनावों में भारतवर्ष में भी हमारे कुछ प्रगतिशील राजनीतिज्ञों ने सन्दिग्ध रूप में इस साधन का आश्रय लिया था।

३. भयंकर वातावरण :

भयंकर वातावरण यह बन रहा है कि यह सर्वव्यापी कामुकता सभी देशों में नरनारियों को आक्रान्त कर रही है यह बेरोक टोक बड़े सूक्ष्म और अगोचर रूप से बढ़ती जा रही है। बदकिस्मती यह है कि कामुकता का यह तूफान चुपचाप और निष्ठुर ढंग से बढ़ रहा है और लोग इस घातक परिवर्तन से सावधानी नहीं कर रहे।

प्रो० पित्रिम सोरोकिन जो कि बीसवीं शताब्दी के महान समाज शास्त्री हैं और १९१९ की रूसी क्रान्ति में लेनिन, ट्राट्स्की, और स्टालिन के साथी रहे हैं, ने इस कामुकता की बढ़ती हुई भयंकर लहर को 'क्रान्ति' का नाम दिया है। जीवन भर की महत्वपूर्ण गवेषणा के अनन्तर तथा विश्वसनीय सामग्री की सुचारू ढंग से व्यवस्था करने के बाद यह महान् पण्डित जो इस समय हार्वर्ड शोध संस्थान में 'रचनात्मक परहितवाद' (Creative Altruism) के संचालक हैं और आर्नल्ड टायनबी के नवाब हैं और जिनकी प्रायः काम्ते और स्पैंगलर से उपमा दी जाती है, इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि 'बदकिस्मती यह है कि सोच विचार रखने वाले लोग भी इस (कामुकता) की व्यापकता और गुरुता से परिचित नहीं हुए हैं। प्रो० सोरोकिन अपनी पुस्तक Sane sex order जो (भारती विद्या भवन ने प्रकाशित की है) में बड़े सारगर्भित ढंग से लिखते हैं :—

"पिछले कुछ दशकों में जो बहुत से परिवर्तन हुए हैं उनमें यह क्रान्ति जो लाखों नर नारियों में होती जा रही है, बड़ी विचित्र है। यह सर्व परिचित राजनैतिक तथा आर्थिक क्रान्तियों से सर्वथा भिन्न है और इस क्रान्ति की ओर किसी का ध्यान भी नहीं जा रहा। इस क्रान्ति के विषय में कोई सार्वजनिक हंगामे नहीं होते, इस के तूफानी दृश्य घरों के एकान्त शयनागारों में घटित होते हैं और इनका सम्बन्ध केवल व्यक्तियों से होता है। (कोई सामूहिक या सामाजिक प्रयास नहीं होता है।) रंगमंचीय घटनाओं की भान्ति इनका कोई प्रदर्शन नहीं होता। इसमें कोई गृहयुद्ध नहीं, कोई वर्गवाद की कशमकश नहीं, और कोई खून खराबा नहीं। शत्रुओं से लड़ने के लिये किन्हीं क्रान्तिकारी सेनाओं की आवश्यकता नहीं। राज्य परिवर्तन इस (कामुकता की क्रान्ति) का ध्येय नहीं। इसका कोई महान् नेता नहीं होता। कोई नायक इसकी योजना नहीं बनाता और कोई संगठन इसका निर्देशन नहीं करता। योजना तथा संगठन रहित यह क्रान्ति लाखों व्यक्तियों द्वारा कार्यान्वित हो रही है। प्रत्येक अपने ढंग से अपनी सुविधानुसार इस पर अमल कर रहा है। क्रान्ति के रूप में इसका समाचार पत्रों के प्रथम पृष्ठों पर, रेडियो पर, या टेलीविज़न में कहीं चित्रण, या प्रस्तुतीकरण नहीं होता। इस क्रान्ति का नाम "कामुकता-क्रान्ति" है।

अपने विचित्र लक्षणों के बावजूद यह कामुकता क्रान्ति किसी भी रंगमंचीय राजनैतिक, या आर्थिक उथल-पुथल से कम महत्वपूर्ण नहीं है। अन्य क्रान्तियों की तुलना में यह वर्तमानयुग की नर-नारियों के जीवनों को बदल डालने वाली अधिक शक्तिशाली क्रान्ति है।"

इस नैतिक और मानसिक पक्षाघात को नजर अन्दाज करना या इसको काबू करने में कदम उठाने के सिलसिलों को स्थगित करना आत्मघात सदृश है। ऐसा न हो कि यह भयंकर रूप ले ले और काबू से बाहर हो जाये। भारत के तरुण स्वतन्त्र गणराज्य पर यह हमेशा हमेशा के लिये लांछन हो जायेगा और इतिहास हमेशा इसे अपराधी ठहरायेगा यदि गणराज्य सरकार ने इस मूलभूत समस्या से निपटने के लिये इस ओर ध्यान नहीं दिया। हमारी बड़ी सुन्दर पंचवर्षीय योजनाएं और वर्तमान की वार्षिक योजनाएं धरी की धरी रह जायेंगी। यदि जनता के नैतिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान न दिया गया और इसकी स्थिति को बद से बतर होने दिया गया।

हम पुनः उस समस्या की ओर आयें जो "व्यथित हिन्दू हृदय" ने हमारे सामने उपस्थित की है। साफ जाहिर होता है कि अपने संस्कारों और साधना के बावजूद वह 'व्यथित हिन्दू हृदय' अपना मन इतना दृढ़ नहीं बना पाया कि वह इन उद्विग्नताओं से उसे पराभूत न होने दे। हमारे पुराणों में विश्वामित्र और मेनका की कहानी शायद इसी लिये वर्णित है कि आने वाली नस्लें इस बात को अच्छी तरह हृदयंगम करलें कि महान् तपस्वी और नीति तथा गुणों के स्रोत तथा संरक्षक महर्षि भी कई बार नारी सौन्दर्य और आकर्षण के बहाव में बह जाते हैं। इसलिये संसार को, जिसमें बहुसंख्या ऐसे लोगों की है जिनमें इतना मनोबल और इतनी आत्मिक शक्ति नहीं कि अपने मन को इस प्रलोभन से सुरक्षित रख सकें, हमेशा सतर्क रहना चाहिये। इन प्रलोभनों को विजयी नहीं होने देना चाहिये। कामुकता के ऐसे कामों को प्रशंसा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये और न ही किसी प्रकार समर्थन करना चाहिये।

---

४. अनैतिक वातावरण :—

एक प्रख्यात् शिक्षा शास्त्री ने अपनी छात्राओं को पढ़ाते हुए कहा—"आजकल का यह पहनावा जिससे अंगों का प्रदर्शन होता है, आपके चरित्र और आपकी आत्मा की तुच्छता को प्रकट करता है। दूसरी बड़ी हानि जो इस से होती हैं वह यह है कि लड़के ऐसे पहनावे से उत्तेजित होते हैं और दूषित बातें सोचने पर मजबूर होते हैं। इसकी जिम्मेदारी आप छात्राओं पर ही आती है।"

चलो जैसा यह शिक्षा शास्त्री महोदय कहते हैं ठीक है। परन्तु हम इस तथ्य से मुंह नहीं मोड़ सकते कि इस प्रकार के कामुकता को उत्तेजना देने वाले

फैशन पुरुष ही बनाते हैं। इस प्रकार के चलचित्र तैयार करने वाले, विज्ञापन बनाने वाले, पोस्टर छापने वाले जिनके विषय में 'व्यथित हिन्दू हृदय' रोना रोता है पुरुष ही होते हैं। इस प्रकार की सौन्दर्य प्रतियोगिताओं, फैशन परेडों, 'राक एण्ड रोल' जैसे नाचों का आयोजन पुरुष मस्तिष्क की ही पैदावार है, ये इसी प्रकार के लालची, दुःसाहसी ग्रौर चालाक पुरुष होते हैं जो इन भोलीभाली अनजान लड़कियों को फुसला कर इस प्रकार ने ग्रायोजन करके अपार धन संग्रह करते हैं। इस तथ्य को भी स्वीकार करना होगा कि किसी स्थान या प्रदेश विशेष में जो फैशन प्रचलित होते हैं उनका ढांचा तैयार करने वाले यही पुरुष होते हैं। वे स्त्रियों से उन फैशनों को अपनाये जाने की अपेक्षा करते हैं। पुरुषों की ऐसी मांग होती है। इस बुराई के लिये जिम्मेदारी स्त्री पुरुष दोनों पर ग्राती है। इस भयंकर बीमारी को फैलाने के लिये स्त्रियां ग्रौर पुरुष पृथक २ भी और सामूहिक रूप से भी जिम्मेदार हैं।

स्त्रियों में ऐसी मनमोहक और भड़कीली ड्रैस पहनने का शौक और प्रसार अधिकतर शहरों में ही है। भारत वर्ष सात लाख ग्रामों में बसता है ग्रौर चिन्ता का विषय यह है कि इस उत्तेजक पहरावे का चिन्तन ग्रामों के मस्तिष्क पर भी छाता जा रहा है।

हमारा अपने प्रति यथार्थ कर्तव्य का पालन यह है कि आने वाली नसलों ग्रौर सन्तानों के प्रति यह कर्तव्य निभायें कि हम इस दूषित वातावरण को रोक दें। इसके फैलाव को समाप्त कर दें। तो इसका सर्वोत्तम उपाय क्या हो सकता है? पुरुष ओर स्त्री में स्त्री इस पवित्र ग्रौर महान् कार्य के सम्पन्न करने में अधिक सक्षम है। क्या यह वास्तविकता नहीं है कि स्त्री यदि तड़क भड़क वाली ड्रैस के स्थान पर साधारण वस्त्र धारण करे तो वह पुरुष वर्ग को छिछोरेपन से महानता की ग्रोर, अश्लीलता से भद्रता की ओर और उत्तेजना से आत्मोत्थान की ग्रोर ले जाने में महान् पार्ट ग्रदा कर सकती है।

५. परिवार—सब से महत्वपूर्ण शिक्षा स्थान :—

ग्रत्यन्त प्राचीनकाल से नवजात मानव पशुग्रों के परिवर्तन के लिये, उनको समझदार और सामाजिक ढंग से उत्तरदायी शहरी बनाने के लिये परिवार ही सबसे महत्वपूर्ण ओर प्रभावी शिक्षालय रहा है। परिवार के निर्णयात्मक शैक्षणिक दायित्व के विषय में यह सूत्र बिल्कुल तथ्यात्मक है कि "जैसा परिवार होगा वैसा ही समाज बनेगा।"

आदर्श स्त्रीत्व के लिये प्रसन्न परिवार एक सुन्दर शिक्षण संस्था है। सुन्दर संवर्धन गृह है। यदि हमारे स्त्रीत्व की कदरें दूषित न हों तब डर की कोई बात नहीं। भविष्य सुरक्षित रहेगा। नैतिक मूल्यों की सुरक्षा के लिये और सामाजिक पतन को रोकने के लिये स्त्री प्रधान उपकरण का दर्जा रखती है। वह समाज के नैतिक स्तर को बनाने वाली और समाज के व्यवहार का आदर्श बनाने वाली होती है। महात्मा गान्धी जी ने अपने अनुपम ढंग से इस समस्या का निदान करते हुए निम्नलिखित उत्तर दिया है :—

आपकी अनुमति से क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि स्त्री पुरुष की तुलना में अधिक शृङ्गार क्यों करती है ? मुझे अपनी कुछ मित्र महिलाओं ने बताया है कि अपने पुरुषों को प्रसन्न करने के लिये हम शृङ्गार करती हैं। मैं आप से स्पष्ट कहता हूं कि यदि आपने संसार की समस्याओं के लिये काम करना है तो फिर अपने पुरुषों को प्रसन्न करने के लिये अपनी शृङ्गार क्रिया से इन्कार करना चाहिये। यदि मेरा जन्म स्त्रो के रूप में होता तो मैं पुरुष की इस भावना, इस दावे के विरुद्ध विद्रोह करता कि स्त्री पुरुष के लिये भोग की वस्तु मात्र है।

अपनी सनक और मौज की दासी मत बनो। पुरुष की दासी मत बनो। अपने आप को (पुरुष की प्रसन्नता के लिये) सजाने (शृङ्गार करने) से इनकार कर दो। ये सुगन्धियां और अतर फलेल मत खरीदो। यदि आप सुन्दर सुगन्धि का प्रसार करना चाहती हैं तो वह सुगन्धि आपके हृदय से आनी चहिये। फिर आप केवल अपने पुरुषों को ही नहीं समस्त मानवता को जीत लेंगी। यह आप का जन्मसिद्ध अधिकार है। पुरुष स्त्री से उत्पन्न होता है। उसका मांस स्त्री के मांस से बना है उसकी हड्डियां स्त्रो की हड्डियों से निर्माण हुई हैं। अपना अस्तित्व पहचानो और संसार को फिर अपना सन्देश दो।" श्री जार्ज हर्बर्ट ने बड़े दावे के साथ कहा है कि एक अच्छी माता सौ शिक्षकों के बराबर होती है।

६. एकस्वस्थ और सुन्दर परिवर्तन का झोंका

जीवन के मूल्यों के प्रति उचित भावना निर्माण करने के लिये तथा सदाचार की उचित भावना अपनाने के लिये मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यही सिद्धान्त और यही नीति अपनाना उचित है कि 'बचपन से ही संस्कार दो'। इसलिये स्कूलों और कालजों से काम प्रारम्भ करना चाहिये। इसलिये यह देखकर उत्साह बढ़ता है कि इस समस्या के विषय में विशेष तथा स्त्रियों के पहनावे के विषय में भारत के कुछ भागों में कुछ महिलाओं, महिला-संगठनों और

शिक्षा अधिकारियों ने ध्यान देना प्रारम्भ किया है।

२७ दिसम्बर १९६५ के दैनिक समाचार पत्रों यह समाचार प्रकाशित हुआ कि पूना महिला मंडल ने एक प्रस्ताव पास किया है और सुझाव दिया है कि हाई स्कूलों की अन्तिम दोनों श्रेणियों में लड़कियों के लिये साढ़ी पहनना आवश्यक निर्धारित किया जाये। प्रस्ताव में कहा था कि पिछले दस वर्षों में लड़कियों ने भारी संख्या में स्कर्ट (घघरे जैसा परिधान) पहनना शुरू कर दिया है। उसका परिणाम यह हुआ है कि साढ़ी बुनने वालों की संख्या घट गई है।

गत जून मास से चिन्तामणराव पटवर्धन कन्या विद्यालय ने (जो हजूरप्पा) हाई स्कूल के नाम से अधिक प्रख्यात है) दशम श्रेणी की लड़कियों के लिये साढ़ी पहनना आवश्यक करार दे दिया। दूसरी श्रेणियों वालो लड़कियों के लिये घुटनों से नीचे जाने वाला स्कर्ट ही पहनने की इजाजत थी। स्कूल के अधिकारियों ने आर्डर में कहा है कि यह आर्डर लड़कियों के हित में ही है क्यों कि स्कर्ट सड़कों पर घूमने वाले दिल फैंक छैलों की दृष्टि अपनी और आकर्षित करती हैं। साढ़ी पहनने से यह बचाव रहता है।

हजूरप्पा हाई स्कूल के इस कदम की प्रशंसा न केवल लड़कियों के माता पिता ने की है अपितु प्रमुख महिला कार्य कर्त्रियों ने भी इस का स्वागत किया है।

यह बात एक स्वास्थ्यप्रद और स्वच्छ परिवर्तन का झोंका है। और भी शैक्षाणिक संस्थाएं और महिला संगठन और सर्वोपरि लड़कियों के माता पिता इस तथ्यपूर्ण, सुगम, और उद्देश्यपूर्ण कार्य वाही पर आचारण करें और इसका अनुकरण करें तो बड़ा उपयोगी हो सकता है।

७. स्त्री मौन नेता के रूप में

भारत की नारियों को निःसहाय होकर इस बहाव में नहीं बह जाना चाहिये। वे तो महान जाति की वंशज हैं जिसने अनुपम सतियों और स्त्रीरत्नों को जन्म दिया है। वे हमारी उज्वल परम्परा की प्रकाश स्तम्भ हैं। मार्ग दर्शक हैं। पथ को आलोकित करने वाली हैं। हमारी माताओं और बहनों को कभी न भूलना चाहिये कि सभ्यता और संस्कृति की रक्षा में उनका भाग पुरुषों से कम नहीं है। प्रकृति ने जो उनका कर्तव्य निर्धारित किया है पुरुषों की माता

के रूप में, सांचे में ढालने वाले के रूप में, परामर्श दाता के रूप में, प्रेरणा देने वाले के रूप में, मौन नेता के रूप में तथा रक्षक और प्रहरी के रूप में उस कर्तव्य को उन्हें कभी नहीं भुलाना चाहिये। उनका कर्तव्य तो यह होना चाहिये कि अपने मजबूत स्थिर, और पवित्र करने वाले हाथों से अपनी सभ्यता और संस्कृति में जो सर्वोत्तम वस्तु है उनको बचायें और जो संस्कृति को कलुषित और पापमय बनाता है उसको एकदम हटा दें। चिन्तन की एक नई पद्धति का निर्माण करना चाहिये। अपने शिष्टाचार में सामाजिक सुधार लाने चाहिये। मानव जाति को पतन से रोकने का उपाय करना ही चाहिये। हम नर नारियों को अपने भारत वर्ष में आधुनिक जीवन की उन भ्रामक वस्तुओं को जो लगता है कि हमें सभ्य बना रही हैं परन्तु जो वास्तव में हमारी पाशविक वृत्तियों को भड़काती है और हमारी उच्च तथा सूक्ष्म भावनाओं को जला डालती हैं, भुला देना चाहिये। ऐसी जीवन पद्धति का निर्माण करना चाहिये जो हमारे जीवन को उद्देश्यपूर्ण और निर्माणात्मक बनाये और वह अपनी भारतीय पद्धति से ही सम्भव हो सकता है।

इसमें कोई शक नहीं कि हमें अपने मकानों की खिड़कियां खुली रखनी ताकि सब दिशाओं से, सब देशों से सुखद समीर के झोंके आयें। परन्तु हम ऐसी आन्धी को प्रवेश न करने दें जो भारतीय संस्कृति को ही उड़ा कर ले जाये। यदि ऐसा हुआ तो देश की मृत्यु हो जायेगी। हमें अपने लापर्वाही के कार्य से या जानबूझ कर गलत कार्यों से, झूठे आत्मसन्तोष से या उग्र उदासीनता से यह कुकर्म नहीं होने देना है।

साभार : 'भवन जर्नल'
वर्ष १२, अंक २२, (मई २२, १९६६)
(पृ० १९—२४)
अनुवादक : श्यामलाल शर्मा

अस्तित्ववाद और मानवतावाद

डा० देवराज बाली

अस्तित्ववाद को इतिहास में सर्वथा एक नया दृष्टिकोण या विचार नहीं माना जा सकता। यूनानी दार्शनिक और विचारक सुकरात वास्तव में एक अस्तित्ववादी दार्शनिक ही था। सुकरात ने यह सलाह दी थी कि परोक्ष जगत को जानने के प्रयास के पहिले हमें अपने आप के बारे में जानने की कोशिश करनी चाहिए। इस के विपरीत पश्चिम में दर्शन जीवन से हमेशा दूर रहा और दार्शनिक परोक्ष-दर्शन की रचना में संलग्न रहे। दर्शन केवल शिक्षा का एक विषय बन कर रह गया और उस की सीमा विश्वविद्यालयों की चारदीवारी में ही बन्धी रह गई। दार्शनिकों ने मानवजीवन की वास्तविक समस्याओं की ओर कभी भी अपना ध्यान नहीं दिया। अस्तित्ववादी दर्शन मानव जीवन की इस अवहेलना की एक प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। हम कह सकते हैं कि अस्तित्ववाद प्रकृतिवाद और भाववाद के विरुद्ध एक विद्रोह ही है। अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने सब से पहिले कहा कि मानवदशा के अतिरिक्त इस संसार में कुछ भी जानने योग्य नहीं है।

अस्तित्ववाद के अनुसार दर्शन का मुख्य उद्देश्य गुणातीत चिन्तन का परित्याग कर के मानव जीवन की वस्तुवाचक और मूलभूत समस्याओं के बारे में गम्भीरता पूर्वक विचार करना है। अस्तित्ववाद मानव की जीवन, मृत्यु तथा दुःख सम्बन्धी समस्याओं के बारे में अपने ठोस विचार प्रस्तुत करता है। इस प्रकार ईश्वर, आत्मा तथा सत्य आदि परम्परावादी दर्शन की समस्याओं का स्थान मानव समस्याओं को दिया गया है।

मानव या जीव, जीवन की समस्याओं से जूझता हुआ, एक नितान्त सीमित प्राणी है। वह अपने वातावरण से भयभीत रहते हुए भी आशाओं के सहारे जीवन व्यतीत करता है। सत्य के बारे में जब हम सर्वथा सामान्य तथा गुणातीत प्रश्नों से जूझते हैं तो यह प्राणी हम पूरी तरह से भूल जाते हैं। इस प्रकार दार्शनिक अपनी आत्मा को भूल कर सत्य की खोज में एक बहुत ही बुरा सौदा करते हैं।

सोरेन किरके गार्ड के शब्दों में "सत्य आत्मकता है।" मानव को आधार मान कर ही सत्य की खोज की जा सकती है। अस्तित्ववाद दर्शन को आत्म-ज्ञान का एक माध्यम बनाना चाहता है। इस के साथ साथ स्वतन्त्रता से चुनी हुई मान्यताओं द्वारा मानव जीवन के परिवर्तन का एक प्रयास भी है। अस्तित्ववाद मानव अस्तित्व के पहिले किसी सत्य को कल्पना नहीं करता। अस्तित्व तत्व से पहिले आता है। अस्तित्ववादी प्लेटो के इस विचार का मज़ाक उड़ाते हैं कि वस्तु से पहिले वस्तु का प्रत्यय आता है। अतः जो कुछ भी मनुष्य है उस के लिये उस का जीना आवश्यक हैं। समाज, राजनीति, साहित्य तथा कला जिन का सम्बन्ध मनुष्य से है जीवन के बाद आती हैं। अस्तित्ववाद आधुनिक मानव की उन भाव-मान्यताओं के विरुद्ध एक शक्तिशाली प्रतिक्रिया है जिन्हों ने मनुष्य को ईश्वर, आत्मा और भाग्य आदि पूर्वमान्य शक्तियों के सामने निर्बल बना दिया। मनुष्य के बारे में सही जानकारी उसके जीवन की उन स्थितियों में ही हो सकती है जिन में वह रहता है। मनुष्य अपनी स्थितियों का ही आभास मात्र है। अन्तर्निहित शक्ति से परिपूर्ण मनुष्य अपने लिये सही-गलत चुनने में स्वतन्त्र है। अस्तित्व के द्वारा वह एक स्वतन्त्र वातावरण में लाया जाता है। इस तरह के वातावरण में बिना किसी बाहिरी शक्ति के आधार के वह अपनी सारी जिम्मेवारी अपने ही कंधों पर ढोता है।

यह हमारा कर्तव्य है कि हम वर्तमान जीवन की स्थितियों पर सोच विचार करें। एक ओर तो मनुष्य के सम्पूर्ण विनाश की सम्भावनायें हैं और दूसरी ओर मनुष्य एक सही ढंग का जीवन व्यतीत करने में भी पूर्ण समर्थ है। सर्वथा एक दूसरे से विरुद्ध सम्भावनाओं में मानव जाति के भविष्य को ठीक ठीक देख पाना बहुत कठिन प्रतीत होता है। इसका अर्थ यह भी नहीं कि हम निराश होकर प्राकृतिक शक्तियों के आगे आत्म समर्पण कर दें। हमें अपनी स्थिति, अपना भविष्य स्वयं ही निर्धारित करना होगा। वर्तमान जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिये मानव को अपने अस्तित्व की सारी जिम्मेवारी अपने

ऊपर लेनी ही होगी। मनुष्य को अन्धविश्वास पलायनवाद और निराशा के आगे घुटने नहीं टेकने हैं अस्तित्ववाद मानव जाति में आत्मविश्वास की भावना को सशक्त करता है। हमें संसार में अपना जीवन बिताना ही है अतः यह अच्छा है कि हम अपने कार्यों और स्वतन्त्र चयन के द्वारा अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करें। हमें अपने अस्तित्व को प्रकृति की समष्टि में नहीं खोना है। हर मनुष्य अपने में अद्वितीय है और यह अद्वितीयपन ही वर्तमान जीवन की भयंकर सम्भावनाओं से उसे उभारने के लिये एक सीढ़ी है। इसी के आधार पर हम अपने अस्तित्व को बनाये रख सकते हैं।

अस्तित्ववाद ने सोये हुए मानव को जगाया है और उसे यह अहसास कराया है कि कोई भी दैवी शक्ति उसकी मदद को नहीं आयेगी, किसी भी चमत्कार से उसका जीवन नहीं बदलेगा। उस को अपना भविष्य स्वयं ही तय करना होगा। अस्तित्ववाद की सब से बड़ी देन यह है कि उसने मनुष्य में आत्मविश्वास की भावना पैदा करने का सतत प्रयास किया। परम्परागत दर्शन और धर्म ने ईश्वर के बारे में मनुष्य के साथ झूठे वायदे कर के उस के अस्तित्व को उस के तत्व से ढक दिया। मनुष्य को लगातार वरगला कर पथभ्रष्ट किया गया। अस्तित्ववाद उसको इस स्थिति का ज्ञान कराता है। वह उसे अन्तर्दर्शन (introspection) की ओर प्रेरित करता है कि "मैं जीवन में यह जान सकूं कि मुझे कैसे जीना चाहिये"।

अस्तित्ववादी प्रश्नों का सामना करने के लिये काफी धैर्य और साहस की आवश्यकता है। अस्तित्ववाद ईश्वर, आत्मा और मोक्ष सम्बन्धी भ्रामक धारणाओं का निवारण करता है। जीवन में मनुष्य निराशा, असुरक्षा तथा दुःख से छुटकारा नहीं पा सकता। इस का यह अर्थ भी नहीं कि हम जीवन से घबरा जायें। वास्तव में दुःख और निराशा ऐसे मूल्यों को जन्म देती हैं जिन से जीवन के सही अर्थ का बोध होता है। पूर्ण सन्तोषजनक जीवन इस संसार में असम्भव बात है अतः हमारा कर्तव्य है कि हम मानव दुःख को चरितार्थ करें तथा अपनी अवस्था को वर्तमान स्थिति में स्थिर करें। दर्शन का मुख्य उद्देश्य है कि वह हमें भय और दिन प्रति दिन की निराशाओं से मुक्ति दिलाये। जीवन का सही अथ स्वतः-प्रेम, आत्मनिश्चय और स्वतन्त्र चुनाव में ही निहित है।

ज्यां पाल सार्त्रे के शब्दों में, "अस्तित्ववाद हर मनुष्य को उस के हवाले कर के सारी जिम्मेवारी उसी के कंधों पर डाल देता है।" मनुष्य वही है जो

वह अपने को बनाता है। अस्तित्ववाद इस बात पर जोर देता है कि हमें अपने को जानने का प्रयास करना चाहिये और यह जानने का प्रयास भी करना चाहिये कि संसार में हमारा क्या अस्तित्व है। हमें इस बात की खोज करनी है कि वर्तमान स्थितियों में हम अपना जीवन किस प्रकार अच्छी तरह बिता सकते हैं।

ईश्वर तथा अनुभवातीतता के विषय में अस्तित्ववादियों के विचार बहुत ही विचारणीय और दिलचस्प हैं। दोस्तोवस्की और नीत्शे ने कहा कि ईश्वर मर गया है। ज्यां पाल सार्त्रे उन के विचारों से सहमति प्रकट करता है और ईश्वर का स्थान मनुष्य को देता है। जिस प्रकार की स्वतन्त्रता देकॉरटे ने ईश्वर को दी वह नास्तिक अस्तित्ववादी मानव को देते हैं। मनुष्य को अपने अस्तित्व के बखान के लिये ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है। नास्तिकतावादी तमाम अनात्मक मूल्यों से इन्कार करते हैं। मनुष्य स्वयं मूल्यों का जन्मदाता है इसलिये सर्वोपरि लक्ष्य स्वयं ही है। सार्त्र के शब्दों में, "यदि ईश्वर न हो तो सब कुछ माना जा सकता है क्यों कि मनुष्य को निर्भर रहने के लिये न आत्मा होगी न परमात्मा और वह अपने को असहाय और निराश्रित ही पावेगा।" मनुष्य बिलकुल अकेला है और वह कोई बहाना नहीं कर सकता। सार्त्रे के अनुसार मनुष्य मुक्त रहने के लिये दण्डित है। अस्तित्ववाद ईश्वर के अस्तित्व को नकारने में ही समाप्त नहीं हो जाता। उस का सही लक्ष्य तो यह सिद्ध करना है कि मनुष्य को अपने से कोई बचा नहीं सकता। इस बात का बोध तभी हो सकता है जब मनुष्य यह समझ ले कि कोई भी अनुभवातीत शक्ति नहीं है।

किरकेगार्ड और जासपर्स जैसे आस्तिक अस्तित्ववादी दार्शनिकों के विचार थोड़े से भिन्न हैं। उनके अनुसार दर्शन में रहस्यवाद का कोई स्थान नहीं हैं। मनुष्य संसार से अलग रह कर ईश्वर से सीधा सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता। ईश्वर की कल्पना इस संसार से अलग नहीं की जा सकती। ईश्वर की क्रिश्चियन धारणा से इन्कार करते हुए उन्होंने कहा कि केवल संसार के द्वारा ही ईश्वर की अभिव्यक्ति और छिपाव सम्भव है। वे ईश्वर के स्थान पर अनुभवातीता में विश्वास करते हैं। इतना निश्चित है कि अस्तित्ववाद में अन्धविश्वासी और रूढ़िवादी धार्मिक लोगों का कोई स्थान नहीं है।

अस्तित्ववादी दर्शन को हम अपने समय की प्रामाणिक, बौद्धिक अभिव्यक्ति कह सकते हैं। यह बात इस से सिद्ध हो जाती है कि आधुनिक साहित्य और कला में अस्तित्ववादी मान्यताओं पर ही अधिक ज़ोर दिया जा रहा है। मिसाल के

तौर पर अस्तित्ववादी दर्शन और आधुनिक कला में जिस विषय-वस्तु पर बार बार ज़ोर दिया गया है वह है मानव की संसार में विलक्षणता और पृथक्करण की स्थिति। मानव जीवन में निहित विरोधाभास, क्षीणता और अनियमितता की अभिव्यक्ति आधुनिक कला की एक विशेषता है। विज्ञान और शिल्पकला के क्षेत्र में नये अविष्कारों से मानव के हाथ में असीम शक्ति का संचय हुआ है। परन्तु ज़िस मानव को अभिव्यक्ति आधुनिक उपन्यासों और चित्रों में हुई है उस का व्यक्तित्व दरारों और छिद्रों से भरा हुआ है। उस का कोई चेहरा नहीं। शंकाओं और प्रतिवादों से पूर्ण वह एक नितान्त सीमित जीव है। आधुनिक कला बहुत हद तक मानव के परम्परागत प्रतिरूप को विध्वंस करने से सम्बंधित है। इसी प्रकार हमारे उपन्यासों में अज्ञात और मुखाकृति हीन ऐसे नायक अकसर मिलते हैं जो सब कुछ होकर भी कुछ नहीं लगते।

यदि हम अपने संसार को पाशविक शक्ति के दबाव से मुक्त करना चाहते हैं तो हमें आधुनिक कला के समान अस्तित्व के हीन और गन्दे पक्षों को प्रतिष्ठित करना होगा। आज का मानव डरा हुआ है क्योंकि वह यह महसूस करता है कि परमाणु बम का अविष्कार कर के उस ने अपने को वर्तमान समय से बहुत पीछे धकेल दिया है। परमाणु बम मानव अस्तित्व की भयानक अनियमितता की अभिव्यक्ति ही है। अस्तित्ववाद परमाणुयुग का ही दर्शन है।

मानव अस्तित्व की समस्याओं पर अस्तित्ववादी दृष्टिकोण बिलकुल मानवतावादी है। अस्तित्ववाद इस लिये मानवतावाद है क्यों कि वह मनुष्य को तमाप मूल्यों का जन्म दाता मानता है। अस्तित्ववादी इस बात पर ज़ोर देते हैं कि मनुष्य को अपने सन्निकट अस्तित्व से आगे बढ़ कर अपने को अपने लक्ष्य के निर्धारण में निरूपण करना चाहिये। जीवन के सही मूल्यों के अनुभव के लिये हमें ईमानदारी से मानव सीमाओं को पहचानना होगा। मानवतावाद की परिभाषा देते हुए सार्त्रे कहता है कि "मानव जगत के अतिरिक्त कोई जगत नहीं है जिस को हम मानव आत्मिकता का जगत कह सकते"। अस्तित्ववाद मानवतावाद है "क्यों कि हम मनुष्य को यह याद दिलाते हैं कि उसके अतिरिक्त उस का कोई विधायक नहीं है। सब तरफ से त्यागे मनुष्य को अपने भाग्य का निर्माण स्वयं ही करना होगा।" मुक्त अस्तित्व का अहसास करते हुए मनुष्य अपने को सही ढंग से समझने में समर्थ होता है। विशेषकर सार्त्रे एक सही मातवतावादी की तरह स्वतन्त्रता की केवल मनुष्य के अपने लिये ही बात नहीं करता अपितु इस बात का ज़ोर देता है कि हर एक मनुष्य को दूसरों की स्वतन्त्रता

का आदर करना चाहिये। ठोस अनुभवों के द्वारा हम अपने को समाज के अन्य लोगों के सम्पर्क से जानने में समर्थ होते हैं। मनुष्य अपनी स्वनन्त्रता को तभी लक्ष्य बना सकता है जब कि वह दूसरों की स्वतन्त्रता का आदर करना सीखे।

अस्तित्ववाद एक आशावादी दृष्टिकोण है क्यों कि यह एक कर्म का सिद्धान्त है। जीवन कुछ भी नहीं जब तक कि मनुष्य स्वयं जीवित रह कर न देखे, और यह मनुष्य के ऊपर निर्भर है कि वह अपने जीवन को कितना सार्थक बना पाता है। यदि सब मनुष्य इस बात को समझ लें तो एक स्वस्थ मानव समाज के निर्माण की सम्भावनायें बढ़ जाती हैं। अस्तित्ववादी इस बात पर ज़ोर देने में कभी भी नहीं थकते कि मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र, उत्तरदायी और अपनी दशा के निर्धारण में पूर्ण समर्थ है। इसी अनिश्चयवाद के आधार पर अस्तित्ववाद विभिन्न दृष्टिकोणों और धर्मों के लोगों को एक समान मंच प्रदान करता है ताकि वे समान हित की मानव समस्याओं के ऊपर अपने विचार व्यक्त कर सकें।

अन्त में यह बताना आवश्यक है कि अस्तित्ववाद कोई एक सिद्धान्त या विचार नहीं है। यह बहुत से विचारों और दृष्टिकोणों का सम्मिश्रित दर्शन है। इस युग में अस्तित्ववाद के विकास की शुरूआत हम डेनमार्क के दार्शनिक सोरेन किरकेगार्ड (1813-1855) से मान सकते हैं। संक्षेप में अस्तित्ववाद के मुख्य प्रतिनिधि हम गेबरियल मारसिल, कार्ल जासपर्स, मार्टिन हेडग्गर और ज्याँ पाल सार्त्र को मानते हैं। ये दार्शनिक अपने विचारों और पहुँच में एक दूसरे से भिन्न हैं। क्रिश्चयन ईश्वर को न मानते हुए भी किरकेगार्ड के सोचने का ढंग एक क्रिश्चयन जैसा ही है। जीवन स्थिति के साथ प्रबलता से सम्बन्धित किरकेगार्ड ने तमाम भाववाची दर्शन का परित्याग कर दिया। जासपर्स की विशेष दिलचस्पी एक अच्छे जीवन में है। तत्वदार्शनिक की बजाए इसको मुख्यता आधुनिक सभ्यता का आलोचक ही कहा जाता है। हेडग्गर वास्तव में एक तत्वदर्शी है। वह नास्तिक है और ईश्वर पर निर्भर रहने की बजाए अपने अस्तित्व की समस्याओं का सामना करना चाहता है। मारसिल एक कैथोलिक है और भाववाद की आलोचना के साथ साथ वह उन तमाम वस्तुओं की सचाई पर जोर देता जो हमारे जीवन और प्रकृति से सम्बंधित हैं और उसे प्रभावित करती हैं। सामाजिक और नैतिक क्षेत्रों में यह समाज द्वारा मनुष्य के वर्गीकरण के विरुद्ध सामान्य अस्तित्ववादी अभियान में भाग लेता है। अन्त में, ज्याँ पाल सार्त्र अपने नास्तिक विचारों के लिये सब से अधिक प्रसिद्ध है। फ्रांस की उग्र निकृष्ट व्यक्तिवादी परम्परा पर चलते हुए ईश्वर के साथ साथ यह भूतकाल को भी मृत मानता है।

अपने जीवन में मनुष्य इसलिये स्वतन्त्र है क्योंकि उसका हर काम भूतकाल के प्रभाव से बिलकुल मुक्त है। सार्त्र ने मानव स्वतन्त्रता पर बल दिया है। विचारों में भिन्नता रखते हुए भी ये सब विचारक परम्परावादी दर्शन के विरुद्ध विद्रोह में एक हो जाते हैं।

समकालीन पाश्चात्य दर्शन में अस्तित्ववाद का एक विशेष स्थान है क्योंकि केवल उसने ही मानव की ठोस तात्कालिक समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दर्शन की बाकी विचार धारायें परम्परावादी दर्शन के विरुद्ध प्रतिक्रिया तो हैं पर मानव समस्याओं पर कोई ठोस विचार प्रस्तुत नहीं करतीं। यही कारण है कि इस युग का एक सामान्य बुद्धिवादी अपने को अस्तित्ववादी दृष्टिकोण के नज़दीक पाता है। अस्तित्ववाद के बारे में जितनी शंकायें या गलत धारणायें हैं उनका मुख्य कारण या तो उसके बारे में अज्ञानता है और या परम्परागत रूढ़ीवाद। अस्तित्ववाद ने मानव विचारधारा में एक नये अध्याय का सूत्रपात किया है और इसके लिये हमारा युग अस्तित्ववादियों का बहुत ऋणी है। उसने मनुष्य को परोक्ष जगत से हटा कर आत्मिक चेतना की ओर प्रेरित किया है ताकि खोया हुआ मानव अपने को पा सके।

हिन्दी कहानी की कहानी

—जगदीश प्रसाद द्विवेदी

प्रेमचन्द, टैगोर, अज्ञेय, जैनेन्द्र, यशपाल, रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, हडसन, पो, वेल्स, सामरसेट माम, स्टीवेन्सन आदि अनेक विद्वानों ने कहानी, की परिभाषायें प्रस्तुत की हैं। उन पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि कहानी कलात्मक अभिव्यक्ति का एक लचकीला और बहुमुखी माध्यम है। परिभाषाओं और व्याख्याओं में इसके चंचल प्राणों को बांध रखना कठिन है। यह अपने तट की सीमाओं को निरन्तर काटा करती है और पार्श्ववर्ती भूमि पर फैलती रहती है। क्या इसे होना चाहिये, और क्या इसे न होना चाहिये इन निर्देशों व व्यवधानों से वह सदा बचकर निकल जाती है। कहा जा सकता है कि कहानी में जीवन की कोई कोमल सूक्ष्म अनुभूति होती है। पाठक को वह जीवन की एक मर्मवेधी झलक देती है औरऐसा वह कथा पात्रों और वार्ता के माध्यम से करती है। कहानी संक्षिप्त होती है और जीवन का एक खण्ड जीवन के छोटे २ कण भी कहा गया है। कहानी में हमें जीवन की, सामाजिक परिस्थिति की, चरित्र की कोई एक झलक भर मिलती है। यह झलक अन्धकार भरे कमरे में बिजली कौंधने के समान हो सकती है। किन्तु स्मृतिपटल पर उसकी अमिट रेखा खिंच जाती है। हम कह सकते हैं कि कहानी वह कथात्मक गद्य रचना है जो एकोन्मुखी प्रभाव समष्टि का लक्ष्य सामने रखकर भाव, विचार, चरित्र, घटना अथवा वातावरण में से किसी एक विषय की संवेदनात्मक एवं अनन्य विवृत्ति को उपस्थित करे।

प्रत्येक कहानी में कोई जीवन मर्म अन्तर्हित होता है जो भावविशेष, चरित्र विशेष या विचार विशेष में प्रस्फुटित होता है और हमारी संवेदना को झकझोर कर हृदय में एक चुभन पैदा करता है घटना, चरित्र, वातावरण, संवाद आदि पाठक के हृदय को द्रवित करने में सहायक होते हैं। कहानी में खिले हुए गुलाब के समान पूर्णता होती है उसमें उपवन के सदृश उपन्यास जैसा प्रसार नहीं होगा।

कहानी में कहानीकार की प्रेरणा, वस्तुविन्यास, चरित्रचित्रण, संवाद, भाषा शैली, देशकाल आदि तत्व होते हैं।

कहानीक र की प्रेरणा कहानी का प्राण होती है। उसका कहानी की प्रभाव समष्टि से गहरा सम्बन्ध होता है। यह सम्पूर्ण कहानी में ओतप्रोत रहती है। इसे *Theme, Plot, germ, Germinal idea, Motive* आदि *English literature* में कहते हैं। वस्तुतः कहानीकार के अन्तःकरण में कल्पना, भावना, अनुभूति, विचार या तथ्य कोई सूक्ष्म बीज अवश्य रहता है जो प्रस्फुटित होकर विकसित होता हुआ कहानी के रूप में संगठित हो जाता है। जीवन का कोई मार्मिक प्रसंग, अनुभूति का कोई सूक्ष्म स्वरूप, चरित्र की कोई मनोवैज्ञानिक भंगिमा, कोई अविस्मरणीय वातावरण, कोई नीति तत्व, ऐसा ही कुछ कहानी की मौलिक प्रेरणा बनने में समर्थ है।

कहानी का दूसरा तत्व वस्तुविन्यास है। इस कथा भाग में कालक्रमानुसार घटना-संकलन रहता है : कहानीकार कथा को क्रमविकास पद्धति पर विकसित करता है और उसे उतार चढ़ाव देकर मार्मिक बनाता है। संक्षिप्तता के कारण कहानी के कथानक को नाटक या उपन्यास के समान विकसित नहीं किया जा सकता। उसमें तो छोटी सी परिधि के भीतर ही आरम्भ, उत्कर्ष व अन्त के बिन्दुओं की योजना करनी होती है। मनोनिष्ठ एवं अंतर्वर्तिनी कहानियों को छोड़कर शेष कहानियों में कथानक होता ही है। मनोवैज्ञानिक कहानियां एक ही मनुष्य के भीतरी घात प्रतिघात को लेकर चलती हैं अतः ऐसी कहानियों में कथानक की क्रमबद्धता का आग्रह व्यर्थ है। परन्तु घटना प्रधान और चरित्रप्रधान कहानियों का कथानक क्रमबद्ध रहता है।

कहानी का तीसरा प्रमुख तत्त्व चरित्र चित्रण है। मनुष्य जीवन की सम्पूर्ण सम्भावनाओं और विविध भंगिमाओं को लेकर कहानीकार चरित्र चित्रण करता है। रचना विस्तार की सीमा के कारण कहानी विकासोन्मुख चरित्र की सारी

सम्भावनायें उपस्थित नहीं कर सकती। चरित्र विकास का पूर्ण विस्तार और सूक्ष्म व्योरा कहानी में नहीं ग्रा सकता। अधिकांश कहानियां भीतरी बाहरी द्वन्द्व द्वारा पात्रों को संघर्षमय स्थिति में उपस्थित करती हैं और चरित्र के किसी प्रेरकभाव पर बल देकर उसी को ताल के मध्य में रखती हैं। पात्रों की ग्रान्तरिक प्रेरणाग्रों को समझकर उन्हें घटनाग्रों की क्रियाग्रों-प्रतिक्रियाओं पर चलाना कुशल कहानीकार का ही काम है : श्रेष्ठ कहानीकार एक पात्र को प्रधानता देते हैं। ग्रन्य पात्र गौण रूप में सामने आते हैं ग्रौर परोक्ष में प्रधान पात्र के चरित्र-विस्तार के भीतर ही उनकी योजना रहती है। हिन्दी कहानी में मुन्शी प्रेमचन्द ने पहलीबार चरित्र चित्रण के लिये मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का उपयोग किया। ग्रब तो मनोविज्ञान नई कहानी का अभिन्न और अनन्य अंग बन गया है। यह मनोवैज्ञानिकता विरोधमूलक परिस्थितियों, संघर्षमयी मनोभूमियों एवं अन्तर्मु खी हलचलों में प्रकट होती हैं।

चौथा तत्त्व संवाद का है। प्रत्येक कहानी में संवाद का होना आवश्यक नहीं है। कहानी के छोटे कलेवर में छोटे-छोटे, आकर्षक, भावनिरूपक, चरित्र व्यंजक संवाद ही अधिक सजते हैं। संवादों के द्वारा चरित्र, भाव, वातावरण ग्रौर कार्य व्यापार की पुष्टि सरलतापूर्वक हो जाती है। कहानी में संवाद की स्थिति स्वतन्त्र नहीं है। वह साधन है, साध्य नहीं। पात्र और स्थिति के अनुसार ही संवाद संक्षिप्त, गतिमय, नाटकीय और भाव उद्‌बोधक होना चाहिये।

पांचवां तत्त्व देशकाल का है जिसका तात्पर्य है स्थानीय रंग। ऐतिहासिक कहानियों में देशकाल का विशेष महत्व होता है। देशकाल में वातावरण, परिवेश, परिस्थिति आदि के तत्त्व भी सम्मिलित हैं। कहानो की सामूहिकता को उभारने ग्रौर प्रतिपाद्य को रसमय बनाने के लिये वातावरण की योजना आवश्यक है। परिवेश में प्रकृति-सज्जा, वस्तुस्थिति विवरण की योजना रहती है। ग्रौर कहानी में कथा वर्णन के साथ परिस्थितियों का सूक्ष्म गठबन्धन ग्रावश्यक है।

भाषा शैली छटा तत्त्व है। यह पात्रानुकूल, रसानुकूल ओर भावमय होती है और कहानीकार के लक्ष्य को लेकर ही उसका रूप निर्माण होता है। प्रेमचन्द की यथार्थ जगत की कहानियां उनकी सरल, प्रासादिक, निरालंकृत भाषाशैली के योग से मार्मिक बन गई हैं, किन्तु प्रसाद की अतीतकल्पी, भावप्रधान, ग्रौर सांस्कृतिक कहानियों के लिये अलंकृत, चित्रमयी, मादक भाषाशैली का प्रयोग हुआ है। कहानी की भाषा शैली उसकी संवेदना को तीव्रता प्रदान करके ही सफल होती

है। उसमें पाठक के हृदय को द्रवित कर सकने की क्षमता होनी चाहिये। वह बौद्धिक ऊहापोह एवं दुरूहता से ग्रसित नहीं होनी चाहिए।

आज कहानी के कई रूप हो गए हैं—कहानी, छोटी कहानी, लघु कथा इत्यादि। कहानी में कुछ घटनायें हो सकती हैं। छोटी कहानी में एक से अधिक घटना नहीं हो सकती। लघुकथा में चिन्तन दृष्टान्त बनकर आते हैं जो बौद्धिक और नैतिक के साथ साथ यथार्थ और आदर्श भी होते हैं।

कहानी की लेखन प्रणालियां भी बढ़ती जा रही हैं :—(1) वर्णनात्मक, (2) ऐतिहासिक, (3) आत्मचरित्र प्रणाली, (4) पत्र प्रणाली, (5) डायरी प्रणाली, (6) संवादात्मक, (7) स्वप्नात्मक।

जीवन के सभी अंग कहानी का विषय बन सकते हैं। किन्तु हिन्दी में इन अंगों के वर्णन की प्रधानता है। 1. सुखान्त या दुःखान्त, 2. जासूसी, 3. प्रेम कहानी, 4. साहस प्रधान बालकोपयोगी, 5. स्केच अथवा शब्दचित्र चरित्र चित्रण प्रधान, 6, अन्योक्ति प्रधान, 7. हास्य प्रधान, 8. सेक्स प्रधान, 9. यथार्थवादी।

कुछ विद्वान इस प्रकार भी वर्गीकरण करते हैं 1. घटना प्रधान, 2. पात्र प्रधान, 3. काल प्रधान।

"कहानी के सम्बन्ध में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है जब कभी मनुष्य ने किसी को किसी स्थान, घटना या देशकाल का वृत्तान्त सुनाया होगा, वह क्या स्वयं अपने आप में कहानी थी? पत्रों द्वारा जब मनुष्य ने अपने देश, परिवार और गांव का हाल लिखा होगा, उस समय कहानी उंगलियों के बल चलने की चेष्टा कर रही होगी और तब नानी की कहानी से परम्परा ग्रहण करती हुई कहानी ने साहित्य का रूप धारण किया होगा।"

कहानी के क्रमिक विकास की दृष्टि से विचार करने पर ऋग्वेद में अनेक कथासूत्र, आख्यान, देवकथा, रूपक आदि हमें मिलते हैं। उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और जातक कथाओं में नीति, धर्म अथवा दर्शन के सिद्धान्त प्रतिपादन के लिये कहानी का उपयोग हुआ है। पंचतन्त्र व हितोपदेश की कहानियां भारतीय नीति साहित्य के अनमोल रत्न हैं। प्रथम शताब्दी के आस पास संस्कृत साहित्य में बृहत्कथा, कथासरित्सागर, कादम्बरी, दशकुमार चरित् जैसे ऐतिहासिक कथा-ग्रन्थों का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी के आरम्भ में काव्य था। विज्ञान, गणित,

ज्योतिष, चिकित्सा शास्त्र सभी पर पद्यबद्ध रचना होती थी। चन्दबरदाई का रासो. जगनिक की आल्हा, जायसी आदि की प्रेम गाथायें, सूर का सूरसागर, तुलसी की रामायण, केशव की रामचन्द्रिका, भूष का शिवराज विजय, लाल का छत्रप्रकाश सूदन का सुजान चरित्र ये सब काव्यग्रन्थ कथाओं पर आश्रित हैं। मध्ययुग में ब्रजभाषा के अन्तर्गत कुछ गद्य साहित्य भी पाया जाता है जैसे, "गोकुल नाथ जी की वैष्णवीय वार्तायें।" किन्तु इस गद्य में कथावार्ता उतनी नहीं थी जितनी धर्म विवेचना।

कलकत्ते में फोर्ट विलियम काॅलेज की स्थापना ने और इसी समय में ईसाई मिशनरियों की धर्म प्रसार की चेष्टा ने हिन्दी को खड़ीबोली को ओर ले जाने का प्रयत्न किया। लल्लूलाल का प्रेमसागर सदलमिश्र का नासिकेतोपाख्यान, सदासुखलाल का सुखसागर, इन्शाअल्लाखां की रानी केतकी की कहानी इसी काल की रचनायें हैं। ये खड़ीबोली हिन्दी के प्रारम्भिक प्रयास हैं। इसके पश्चात् राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह ने लिखना आरम्भ किया। शिव-प्रसाद सितारेहिन्द ने 'गुलाब और चमेली का किस्सा, राजा भोज का सपना, 'वीरसिंह का वृत्तान्त, 'आलसियों को कोड़ा, इत्यादि कई कहानियां लिखीं। इनमें चरित्र शिक्षा और मनोरंजकता मिलती है और नीति के उपदेश। इसके साहित्य निर्माण में हिन्दी बि ा अरबी फारसी का सहारा लिये नहीं चल सकी। राजा लक्ष्मणसिंह की हिन्दी में संस्कृत शब्द पाये जाते हैं इन्होंने शकुन्तला नाटक का हिन्दी में अनुवाद किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १८६८ के लगभग लेखनकार्य प्रारम्भ किया। इसी काल से हिन्दी में वह चेतना उदित हुई जिससे वह अपने चारों ओर की भाषाओं को देखकर अपना रूप स्थिर कर सके। फलस्वरूप संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं से सम्पर्क स्थापित किया गया। अनेक कहानियों, नाटकों, उपन्यासों के अनुवाद हुये। इस भारतेन्दु युग (जो १८७० से १९०० ई. तक माना जाता है।) की कहानियों का महत्व ऐतिहासिक ही अधिक है। उनमें इतनी कलाचेतना नहीं है, कि आज हम उनसे रसग्रहण कर सकें। इस युग की कहानी जहां पूर्व परम्पराओं से बलग्रहण करती है वहां पश्चिम की नई विधियों से भी वह प्रभावित है। इस आरम्भिक युग का कहानी साहित्य कहानी कला के प्रथम उन्मेष की सूचना देता है। उसमें कथाशिल्प का सुस्पष्ट रूप हमें नहीं मिलता परन्तु परवर्ती विकास की सूचना अवश्य मिलती है।

हिन्दी के नवयुग का द्वितीय उत्थान सन् १९०० ई. से 'सरस्वती, जैसी

प्रत्रिका के उदय के साथ माना जाता है। हिन्दी की पहली कहानी किसे कहें, यह निश्चय करना कठिन है। प्रारम्भिक कहानियों में प्राथमिकता का श्रेय किशोरीलाल गोस्वामी को इन्दुमती (१६००) और वंगमहिला की दुलाईवाली (१६०७) कहानियों को दिया जाता है। मा. भगवानदास की प्लेग की चुड़ैल (१६०२) आ. रामचन्द्र शुक्ल की कहानो ग्यारह वर्ष का समय (१६०३) गिरिजा दत्त वाजपेयी की कहानी 'पण्डित और पण्डितानी, (१६०३) इसी युग की रचनायें हैं। सन् १६०१ की सरस्वती में मिश्रबन्धुओं ने उस समय के कुछ लेखकों के नामों का उल्लेख कि । है, वे नाम हैं :—पं महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्री धर पाठक, राधाचरण गोस्वामो, राधाकृष्ण दास, मदन मोहन मालवीय, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, श्यामसुन्दर दास B. A., किशोरीलाल गोस्वामी, कार्तिक प्रसाद खत्री, अयोध्यासिंह उपाध्याय, कृष्ण बल्देव शर्मा, केशव प्रसाद सिंह, अमृतलाल शर्मा, जगन्नाथ दास B. A, मेहता लज्जाराम, माधवप्रसाद मिश्र, तोताराम वकील, मुन्शी देवीप्रसाद, गोपीनाथ M.A., लाला सीतरा म, देवदत्त त्रिपाठी, भैरवप्रसाद विशाल, मिश्रबन्धु पार्वती नन्दन आदि।

हिन्दी कहानी का दूसरा उत्थान १६३० तक चलता है। इसे विकास युग कहा जा सकता है। वस्तुतः इसी युग में हिन्दी कहानी की नींव स्थायी रूप से पड़ी और उसे कलात्मक गौरव प्राप्त हुआ। प्रेमचन्द और प्रसाद इस युग की सब से बड़ी क्रियमाण शक्तियां हैं परन्तु इनके अतिरिक्त अन्य २४-२५ सिद्ध कहानीकार भी हमारे सामने आते हैं और साहित्य के सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली अंग के रूप में कहानो की स्थापना हो जाती है। 'सरस्वती, पत्रिका ने लेखक मण्डल निर्माण किया। सरस्वती की सुरुचि, उसका संयम और गम्भीरता, उसके नवनिर्माण, नई प्रेरणायें और संशोधनों ने हिन्दी को निश्चय ही उन्नत किया। यह कार्य उसी काल में हो रहा था जब देवकीनन्दन खत्री अपना जादू फैलाये हुए थे। खत्री जी की यथार्थ परक, विशद, असम्भव कल्पनासृष्टि से मन का एक पक्ष ही सन्तुष्ट होता था। उच्चवर्ग ने खत्री को पढ़ा अवश्य, उनका आदर नहीं किया।

प्रेमचन्द व प्रसाद के साथ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जिन्हों केवल तीन ही कहानियां "सुखमय जीवन, बुद्धू का कांटा, व उसने कहा था" लिखी है का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जहां प्रेमचन्द की अधिकांश कहानियां चरित्रगत हैं और प्रसाद की भावगत, वहां गुलेरी जी की कहानियों में दोनों का सम्मिश्रण मिलता है। प्रेमचन्द संस्थान के कहानीकारों में विश्वम्भरनाथ जिज्जा, जी, पी. श्रीवास्तव राजा राधिकारमण सिंह, विश्वम्भर नाथ कौशिक, पं. ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्द

वल्लभ पन्त, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा और भगवती प्रसाद वाजपेयी का नाम आता है आज भी चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, श्रीराम शर्मा राम, गंगा प्रसाद पाण्डेय आदि लेखक प्रेमचन्द की परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। प्रसाद संस्थान के कहानीकारों में राय कृष्णदास, वाचस्पति पाठक, विनोदशंकर व्यास, चण्डीप्रसाद हृदयेश, कमलाकान्त वर्मा आदि का नाम आता है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री, ऋषभ चरण जैन, बेचन शर्मा उग्र इत्यादि जीवन के नग्न यथार्थ को कहानी का विषय बनाते हैं। परन्तु उनकी कहानियां भी प्रसाद संस्थान के कहानीकारों की रचनाओं की तरह भावप्रवण, अतिरंजित व वातावरण प्रमुख हैं। वास्तव में बीसवीं शताब्दो के दूसरे तीसरे दशकों को हिन्दी कहानी की समस्त प्रवृत्तियां और शिल्पविधियां प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानियों मे विकासोन्मुख रूप प्राप्त करती हैं और वे दो विभिन्न, परन्तु पूरक व्यक्तित्वों की प्रतीक हैं।

कहते हैं कि साहित्यकार समाज का रेडियो होता है। समाज में राजनैतिक आर्थिक, कला, विज्ञान, धर्मसंस्कृति आदि की दिशाओं में जो परिवर्तन, उतार चढ़ाव, उथल पुथल हुआ करते हैं, यह स्वाभाविक ही है कि उनका प्रभाव साहित्यकार पर पड़े और फलस्वरूप उसकी रचनाओं में भी उनकी छाया आये। यह स्मरणीय है कि साहित्यकार समाज का सजीव और जागरूक रेडियो होता है, और वह समाज की समस्याओं पर अपने दृष्टिकोण से विचार करता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी रचनाओं में समाज की राजनैतिक, आर्थिक, कलात्मक, वैज्ञानिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं के साथ उसकी अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं एवं धारणाओं का भी पुट मिला रहता है। भारतेन्दु युग (१८७०-१९००) ई. तथा आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी युग (१९००-१९३०) के साहित्य निर्माताओं ने भी तत्कालीन समाज और जीवन की समस्याओं को अपने अपने ढंग से अपनी रचनाओं में व्यक्त करने का प्रयास किया। उस समय भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य छाया हुआ था। पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का प्रभाव शनै-शनै बढ़ रहा था। साहित्य कला व विज्ञान पर भी योरोपियन प्रभाव पड़ रहा था। बंगाल में ब्रह्मसमाज, उत्तर भारत में आर्यसमाज, दक्षिण भारत में प्रार्थना समाज जनता का जीवन के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित करने और नया प्रकाश फैलाने की चेष्टा कर रहे थे। कांग्रेस के द्वारा देशभक्ति और स्वराज्य के प्रति चेतना जागृत की जा रही थी। इस पृष्ठभूमि में साहित्यकारों ने जिन तत्कालीन समस्याओं को अनुभव किया, वे संक्षेप में निम्नलिखित थीं :—

१. प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों के नये अर्थ। नयी दृष्टि से उनकी उपयोगी व्याख्या करने को प्रवृत्ति। ईसाई धर्म के प्रचार की प्रतिक्रियास्वरूप सतर्कता।

२. अंग्रेजों से सम्पर्क, उनका अनुकरण। कुछ अनुकरण के पक्षपाती थे कुछ विरोधी।

३. स्त्री समस्या :—स्त्रा शिक्षा प्रचार, उनकी अवस्था में सुधार, विधवा विवाह के लिये आन्दोलन, पर्दा प्रथा का विरोध, बाल विवाह बहु विवाह का निषेध आदि। सतीप्रथा का निषेध।

४. शिक्षा समस्या :—शिक्षा का प्रसार, अंग्रेजी साहित्य का प्रसार।

५. पराधीनता के प्रति असन्तोष, स्वातन्त्र्य प्रेम और जातीय प्रतिष्ठा के भाव।

६. देश की दुर्दशा का अनुभव, आर्थिक शोषण, उद्योग, व्यापार, कृषि आदि का पतन।

७. समाज में फैली अनेक रूढ़ियां, अन्धविश्वास आदि जैसे समुद्र पार न जाना।

८. मातृभाषा प्रेम का अभाव और उसको जागृत करने का प्रयास।

९. शिक्षित अशिक्षित वर्ग के निर्माण होने से दोनों में पृथकता की समस्या।

१०. नगर निवासी व ग्रामीन जनता में अलगाव की समस्या।

यद्यपि कुछ कहानियां मात्र मनोरंजन के लिये लिखी गईं फिर भी भारतेन्दु युग व द्विवेदी युग के कहानीकारों ने अपने व्यक्तित्व का पुट देकर उपर्युक्त भारतीय जीवन व समाज की समस्याओं को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत किया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय तक लेखकों के सामने भाषा का प्रश्न भी था। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने राजा शिवप्रसाद व राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा के बीच की चलती हुई भाषा को मान्यता दी थी किन्तु उसे व्याकरण सम्मत, परिष्कृत और सुसंस्कृत बनाने का श्रेय आचार्य द्विवेदी को ही है। और आगे के कहानीकारों ने इसी भाषा को अपनाने का प्रयास किया यद्यपि उनकी भाषा में उनके अपने व्यक्तित्व का भी पुट था।

प्रेमचन्द तक आते-आते कहानीकार जटिल, गम्भीर और गहरा होने लगा। राजनीति में 'तिलक' और फिर 'गांधी' ने आकर कांग्रेस को क्रियात्मक निर्माण और स्वराज्य की ओर अग्रसर किया। १६१७ में होनेवाली रूस की क्रान्ति ने समाजवाद का प्रसार किया। भावक्षेत्र में टालस्टाय, मार्क्स, टैगोर, गांधी, बर्निड शा आदि ने दीवालें तोड़ना आरम्भ किया। राजा राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी र मकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानन्द, स्वामी .ववेकानन्द आदि ने धार्मिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में नया प्रकाश फैलाना प्रारम्भ किया। प्रेमचन्द जनजीवन के कहानीकार थे। उन्होंने सरल चलती हुई भाषा को अपनाया और प्राय: चरित्र प्रधान कहानियां लिखीं। प्रसाद की कहानियों का धरातल बहुत ऊंचा है। वह वस्तुत: मानव सौन्दर्य की अनुभूति के कवि, नाटककार और कहानीकार थे। इसी लिये उनकी अधिकांश कहानियां भावगत हैं और भाषा संस्कृतनिष्ठ।

१६३० से लेकर अबतक भारतीय कहानी पर्याप्त विकसित और प्रौढ़ हुई है। ससार के किसी भी कहानी साहित्य की समानता वह कर सकती है। टैगोर की कला में उसे सूक्ष्म, कोमल अनुभूति मिली, शरत् की रचनाओं में हिन्दू-नारी के मन की गहरी वेदना और सामाजिक परिस्थितियों की क्रूरता मिली और प्रेमचन्द के साहित्य में ग्राम जीवन का विशिष्ट चित्रण और भारतीय समाज का व्यापक दिग्दर्शन मिला। 'प्रेमचन्द, प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक और सुदर्शन ने हिन्दी कहानी को प्रौढ़ दृष्टि दी, उसे सामाजिक आदर्शवादिता और कलात्मकता प्रदान की, उसे उन्नत और समृद्ध परम्परा दी। जैनेन्द्र ने मध्यवर्ग के जीवन का चित्रण किया, वैयक्तिक कुण्ठाओं का उद्घाटन किया और एक सहज सरल अभिव्यक्ति दी। भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, और अज्ञेय की रचनायें मध्यमवर्ग के नागरिक जीवन का वर्णन करती हैं, और व्यक्ति के मन की ग्रन्थियों को सुलझाती और उलझाती हैं। और इन्हों ने अनुपम कलाशिल्प भी कहानी को दिया है। यशपाल, अश्क, रांगेय राघव, निर्गुण, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, पहाड़ो, राधाकृष्ण, विष्णुप्रभाकर, अमृतराय आदि सामाजिक जीवन को अपनी कला में व्यक्त करते हैं। उनकी दृष्टि स्वस्थ व उदार है और वे मन की विकृतियों को ही जीवन का चरम सत्य नहीं मानते हैं। राहुल सांकृत्यायन और भगवतशरण उपाध्याय ने ऐतिहासिक कहानी का विकास किया। इनकी दृष्टि भी मूलत: सामाजिक थी और सामाजिक संघर्षों व प्रगति को ही इन्हों ने अपनी कला में अंकित किया हैं।

आज के युग तक आते आते हिन्दी कहानी की धारा विराट और विशाल

हो चुकी है, उसका आग्रह नयेपन कलाशिल्प और प्रयोग के प्रति है। किन्तु उसमें वह प्रसार, गहराई, जीवन की सम्पूर्ण आकुलता अभी नहीं है जो प्रेमचन्द में हमें मिलती है। इसका एक कारण यह है कि आज का लेखक अपने में अधिक सीमित रहता है और जन जीवन व जनमन से उसका वह सहज, स्वाभाविक लगाव नहीं है जो उसके पूर्ववर्ती कहानीकारों में था। नई पीढ़ी के कहानीकारों में कमल जोशी की कहानियों में कहानीपन है, सुगढ़ चरित्र चित्रण है, सामाजिक परिस्थितियों के प्रति करुणाविगलित दृष्टि है। परम्परागत सांचों को कमल जोशी ने तोड़ा नहीं है, उन्हीं के आधार पर नये सांचों को बनाया है। 'चार के चार', 'बहता तिनका', और 'पत्थर की आंख', में कमल जोशी की उत्कृष्ट कला का परिचय पा सकते हैं। मार्कण्डेय के 'पानफूल' में 'गुलरा के बाबा', 'सरवइया', 'सात बच्चों की मां' आदि अनेक श्रेष्ठ कहानियां संगृहीत हैं। गांव की मिट्टी की सुगन्ध इन कहानियों में है और निर्देश करता है कि नये कहानीकार प्रेमचन्द के पद चिन्हों पर चलने और गांव की ओर लौटने को उत्सुक हैं। 'शिवप्रसादसिंह के कहानी संग्रह 'आरपार की माला' में गांव का विशद और सजीव चित्रण मिलता है। इनकी शैली में गांव को मुहावरेदार भाषा का पुट मिलता है। जिसके कारण इनकी भाषा मधुर औ अभिव्यन्जना गहरी होगई है। गांव का प्राकृतिक और पारिवारिक वातावरण इन कहानियों में मूर्त हो उठा है। इसी प्रकार केशवमिश्र की अनेक कहानियों में ग्राम जीवन का सजीव अंकन है। नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, लक्ष्मीनारायण लाल, मार्कण्डेय, रामदरश मिश्र, केशवमिश्र आदि ग्राम जीवन की छायायें अपने कहानी साहित्य में अंकित कर रहे है। मुजीब रिज़वी ने गंगा से गोमती तक, जैसे कहानी संग्रहों में राजनीतिक दृष्टि से सजग व मार्मिक कहानियां लिखी हैं। आज की सामाजिक वास्तविकता के करुण और मर्मस्पर्शी चित्र खींचे हैं और कहा-कहीं शासकवर्ग के प्रति मधुर कोमल व्यंग्य किया है।

मनोहर श्याम जोशी, कमलेश्वर व जितेन्द्र की कहानियों में अब, घुटन थकान, असफलता की भावना पाई जाती है। इन कहानियों में प्रवाह है, शक्ति है, प्रतिभा है। जीवन की सड़न और सीलन इनकी कहानियों में अंकित हुई है किन्तु आज असंख्य भारतवासियों का जीवन भी तो इसी प्रकार का है। कमलेश्वर की कला में बड़े वेग से प्रौढ़ता आ रही है। वह हिन्दू निम्न मध्यवर्ग का चित्रण करने में विशेष कुशल हैं।

घनश्या सेठी, राजेन्द्र यादव, रामकुमार, मोहन राकेश, ओमप्रकाश, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, रामदशरथ मिश्र, विद्यासागर नौटियाल, श्रीमती शशि

तिवारी और कृष्णा सोबती के समान हिन्दी कहानीकार निरन्तर प्रकाश में आ रहे हैं और साधनारत हैं। ये कहानी लेखक सामाजिकभूमि में व्यक्ति की समस्याओं को देखते हैं। उनके पात्रों की असफलताओं और कुण्ठाओं के पीछे समाज की विषम परिस्थितियां रहती हैं। नये कहानीकार कलाशिल्प और भाषा के सौन्दर्य को भी बहुत महत्व दे रहे हैं। वे अपनी रचनाओं को निर्दोष अलंकृत और सुगढ़ बनाना चाहते हैं। वास्तव में इसी दृष्टि से उन्हे लगता हैं कि वे प्रेमचन्द की कला से आगे बढ़े हैं। आज के अनेक कहानीकार बहुत गठी चुस्त आकर्षक शब्दावली का प्रयोग करते हैं। उनमें से कुछ गांव की भाषा और उसके मुहावरों का भी पुट अपनी शैली में देते हैं। कभी-कभी नये प्रयोगों को ही सफलता का चिन्ह समझा जाता है। अनेक नई कहानियां में हम 'सेक्स, की अत्यधिक मांसल अभिव्यक्ति पाते हैं। जीवन की संयत, संतुलित परिभाषा ऐसी कहानियों में हमें नहीं मिलती।

पुरानी पीढ़ी के कहानीकार पाठक के मन पर आघात करते थे, उसे द्रवित और विचलित करते थे उनकी कहानियों में कथानक, चरित्र, सामाजिक परिवेश सभी कुछ रहता था। आज के कुछ कहानीकार किसी सूक्ष्म अनुभूति अथवा कोमल भावना को अंकित करना चाहते हैं और नई बात को वे नये ढंग से कहने की आकांक्षा रखते हैं।

गांधीवाद और साम्यवाद ने जहां एक ओर आज के कहानीकार को प्रभावित किया है, वहां मनोविज्ञान और 'सेक्स, ने मनुष्य के अन्तर्मुखी जीवन के अध्ययन ने नये अध्याय जोड़े हैं। एक का आधार सामूहिक जीवन विकास और लोक कल्याण की आर्थिक दृष्टि है तो दूसरे का आधार व्यक्तिगत जीवन व अंतश्चेतना है। फ्रायड के 'सेक्स' व एडलर के 'अहं, सम्बन्धी सिद्धान्तों को लेकर अनेक कहानियां आजकल लिखी गई हैं।

नई कहानी में जहां बुद्धि का अतिरेक है और व्यक्ति को लेकर विद्रोह विस्फोट और चिन्तन की प्रवृत्ति है वहां कहानीकार वाह्य जीवन से एकदम हट कर मानव के अन्तर्जगत और अवचेतन में उतर आया है। कर्मप्रेरणायें, कुण्ठायें, वर्जनायें, अपराधी मानस की सूक्ष्म से सूक्ष्म हलचलें आज कहानी में विश्लेषित हो रही हैं। भय की बात है कि कहीं कहानी बाह्य जीवन से पृथक् होकर मात्र मानस जगत् की वस्तु बनकर न रह जाये।

दूसरा दृष्टिकोण अर्थ को लेकर विकसित हुआ है जिसके अनुसार व्यष्टि का

समष्टि में इतना विलयन हो गया है कि उसकी सत्ता ही नहीं रह गई है। यह मार्क्स का भौतिकवादी जीवन दर्शन है जो मनुष्य को पूंजीवादी, महाजनी इकाई और सर्वहारा वर्ग में बांटता है। यह जीवन को आर्थिक भूमि पर उतारता है और वर्ग संघर्ष को मानवीय विकास की प्रमुख प्रक्रिया मानता है। गांधीवादी दर्शन की आध्यात्मिकता व नीतिपरता को यह अव्यावहारिक मानता है। निश्चित ही यह दृष्टिकोण भी एकांगी है और कहानीकार की व्यापक जीवन चेतना को संकीर्ण बनाता है।

यह स्पष्ट है कि आज की हिन्दी कहानी बुद्धिधर्मी, सिद्धान्त ग्रस्त और प्रयोगवाद-वादी है। वह प्रयोगों पर टिकी है, जीवन धर्मी नहीं है। और इसी अंश में वह दुर्बल भी है। नयी पीढ़ी के कहानीकारों को जीवन में समाना होगा। जो जीवन में प्रविष्ट होकर जीवन देखेगा और समाधान खोजेगा और जो शान्ति, प्रगति एवं जनवाद का पक्षपाती है वही कहानीकार प्रेमचन्द के रूप में सम्माननीय होगा।

————

"लोक-गीतों में हास-परिहास"

—गोपीरंजन अग्रवाल

फागुन के दिन आते ही, मन एक उल्लास से भर जाता है। होली का पर्व अपने साथ हास-परिहास की धूम लिये आता है। देश के गांव-गांव रंग भरे गीतों से गूंज उठते हैं। अपनी धारा का अमृत-रस गांव के गीतों में छलकता है। उनमें कहीं पति-पत्नी की नोक-झोंक है, कहीं "झूमरे" ब्रज के ढकोसले या गढ़वाली "बाजूबन्दों" के तरंग भरे रंग हैं। विषय भी विभिन्न हैं कर्कशा नारी, अनमेल विवाह या दंपतियों के हास-परिहास।

कर्कशा नारी जीवन के सब रस नीरस बना देती है। किन्तु कवि उसका भी रस लेकर वर्णन करता है। कर्कशा नारी का दर्शन, या संसर्ग भले ही मन को चुभे, पर उसकी दिनचर्या का व्यंग्यपूर्ण वर्णन हास्य की ही सृष्टि करता है। कवि के अनुसार कर्कशा बड़े 'भाग' वाले को मिलती है। सात घड़ी दिन तक रोने के बाद उठी, तो झाड़ू लगाते लगाते घर-भर को गालियां दे डालती है। टूटे घर पर कौआ रोया, तो तीन मेहमान चले आये। कर्कशा बोली, "बैठो ! कण्डे बीन लाती हूं। "हांडी में पानी भर दिया और गिनती के तीन चावल डाल दिये। कठौता भर मांड निकाल कर, मेहमानों को पीने को दे दी। पति के लिये सात सेर की सात रोटियां सेंक कर, अपने लिये नौ सेर की एक ही 'लिट्टी' सेंकी। पति को गालियां देती बोली, "दाढ़ीजार तूने सातों खा लीं। मुझ कुलवंती ने तो एक ही खाई।" देहली पर बैठ कर तेल लगायेगी। मांग में 'सेंदूर' भर कर, आंचल फैला कर, सूर्य से 'मिन्नत' मांगेगी, मुझे कब रांड बनाओगे देवता।"

धनि धनि रे पुरुष तोरि भागि, करकसा नारि मिली।
सात घरी दिन रोय के जागी, लिहिन बढ़निया उठाय,

निहुरे निहुरे अंगनां बटोरे, घर भर को गरियाय। करकसा नारि मिली।
बखरी पर से कौवा रोवै, पहुना अइलें तान।
आवा पाहुन घर मां बैठा, कंडा लाऊं बीन। करकसा नारी मिली।
हंड़िया भर के अदहन दिहली, चाउर मेरवली तीन।
कठवत भरिके मांड़ पसवली, पियऽ हिलौर हिलौर। करकसा नारि मिली।
सात सेर के भात पकवली, नव सेरे कै एक।
तू दहिजरऊ सातों खइल। हम कुलवंती एक। करकसा नारि मिली।
डेहरी बैठे तेल लगावै, सेनुर भरावै मांग।
आंचर पसारि के सूरज मनावै, होइहों कब मैं रांड़ि। करकसा नारि मिली।

बाल-विवाह को प्रथा पर भी तीखे व्यंग्य इन लोक-गीतों में प्राप्त हैं। 'चूहे' ऐसे पति को तेल लगा कर, पत्नी पलंग पर सुला देती है। पर चूहे ही तो ठहरे। बिल्ली 'सौत सी' उठा ले जाती है। सारा घर रो-रोकर सर्वत्र ढूंढता है। अंत में हज़रत मिले भी, तो खाट के नीचे रें रें कर, रिरियाते हुए :—

"नाहक गौन दिये मोर बाबा बालक कन्त हमार रे।
चीलर अस दुइ देवर हमरे बलमा मुसे अनुहार रे।

तेलवा लगायउं बुकउवा लगायउं खटिया पर दिहेउं ओलारि रे।
नेपे नेपे आइ बिलरिया सवतिया लै गइ बलमा हमार रे।।

सासु मोरी रोवै ननद मोरी रोवै, रोवह हमरो बलाइ रे।
कोठबा में ढूंढेउं अटरिया में ढूंढेउं, खटिया तरे रिरियांय रे।।"

ऐसे 'लरिका' बालम एक तो अनाड़ी होते हैं, फिर महा डरपोक। अरहर के खेत में सियारों की 'हुआं-हुआं' सुनते ही रोने लगते हैं। एक तो द्वार खोलने पर नायिका वैसे ही खीझी थी, रोने पर तो 'सुलग' ही उठी। उस पर तुर्रा यह कि चीख-पुकार सुन कर, सास-ननद ने पूछा, "मेरे बबुये को किसने मारा?"

"बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतलो ओसरिया,
बनवारी हो, रहरी में बोलेला सियार।।

खोले के चोली बंद खोलेला किवार,
बनवारी हो, जरि गैले एड़ीसे कपार ।।

रहरी में सुनि के सियार के बोलिया ।
बनवारी हो, रोवै लगलें लरिका भतार ।।

अंगना से माई अहलीं, दुअरा से बहिना ।
बनवारी हो, के मारल बबुआ हमार ।।

छोटे-छोटे छंदों में भी हास्य की फुलझड़ियां खिल उठतो हैं। धोबियों के भी कुछ इस प्रकार के गीत मिलते हैं। धोबी काम की अधिकता से थक जाता है। उसे जीवन-साथी की आवश्यकता होती है, न केवल घर संभालने के लिये, अपितु काम में भो हाथ बंटाने के लिये। इसीलिये वह चार विवाहों की ज़रूरत बताता है :—

''धोबो क चाहिये चारि मेहरिया एक घर का एक घाट।
एक मेहरिया रोटी पकावै, एक बिछावै खाट।
दुलहिन एक बिछावै खाट, चिरई एक बिछावै खाट।

कभी अपनी कला पर गर्व करता, वह कुलीनों पर भी रसिकता के छींटें फेंक देता है। गांव की गोरी कहती है, या तो गांव में धोबी को लाकर बसावो, या मैं 'स्वयं धोबी के घर चली जाऊंगी। मेरी अंगिया जो मैली हो गई है :—

''अंगिया चुलिया मैली रे हुई गई, बिन धोबी को गांव।
कै धुबिया पिय लाइ बसावै, कै धुबिया कै जांव ।।

कहीं कहीं मूर्ख पति पर भी कटाक्ष है। वह उभरते यौवन को रोग समझ कर, नीम पोसता है :—

''गोरी कै जुबना हुमसन लागै, जैसे हिरनिया क सींग।
मूरख जाने कछु रोग उठत है, ऊ तो पोसि लगावै नीम ।।

स्वाद के लोभी साधुओं को भी नहीं छोड़ा गया :—

''लाला जी मैं बाबा जी घर को।
पीपर काट सुमिरना कीनो,
सोंटा वाकी जर को ।।
लंबे तिलक त्रिपुण्ड लगाये,
नाम लियो हरि हर को ।।

साधू बन के स्वाद लियो है,
सदा रसोई तर को ।।"

पति को खिझा कर, चल देने वाली पत्नी का भी चित्रण इन लोक-गीतों में किया गया है। धन के बल पर शादी करने वाले पति ऐसी पत्नी के चले जाने पर कैसे विह्वल होते हैं, इस ओर भी संकेत है :—

"ओ मोटे लाला गजब कर डाला।
बटुआ भी ले गई, ताली भी ले गई,
साइकिल को दे गई ताला। गजब कर डाला।।

थाली भी खो गई, लोटा भी खो गया।
जाने कहां गया प्याला। गजब कर डाला।।

छोरा भी रोवै, छोरी भी रोवै।
हंसता है लेकिन साला। गजब कर डाला।।

आंखों में आंसू, होठों में हाए।
दिल में पड़ गया छाला।। गजब कर डाला।।

दिन नहीं चैन, रैन नहीं निंदिया।
कैसी से पड़ गया पाला।। गजब कर डाला।।

गढ़वाली लोकगीतों में "बाजूबन्द" गीतात्मक संवाद होते हैं। उनमें तरुण-तरुणियों की नोक-झोंक मोहक होती है। यौवन के पात्र में हास-उल्लास का रंग छलकता है। जीवन की पथरीली डगर पर दो युवा हृदय मिल जाते हैं। थोड़ी नोक-झोंक हुई। मन हरा हो गया, प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण सा :—

"घूघती की घोली	घूघती का घोंसला,
मैं इनु पूछयो गैल्या केई गौं की होली ?	मैं पूछता हूँ साथी किस गांव की तू है ?
नथूली को मूंगो,	नथ का मूंगा,
तु करवन आई छोरा छांदाड़ सी ढूंगो।	अरे तू नाली के पत्थर सा, कहां से चला आया ?
नरयल की गीरी.	नारियल की गिरी,
दुन्यां जाणक बोलैणी रणू ढंग सीरी।	दुनिया नाशवान है, ढंग से रहो।
साग लायो कोजी,	साग सब्जी बनाई,

त्वै सरी जवान छोरा मोरा
घाघरा का बोजी ।
माछू मारया ऐन,
मुख मोड़ि फुण्ड ल्यादी क्या बलेलो मेन ।
वणियां को बीज,
डांड़ की ग्राछरी माहे, तू कतनी सीचीज,
सेन्दुर की डबी,
करड़ा मिजाज तेरा झबटीलू कबी ।
पाणी को पनेरो,
तू नी लाली व.ली माया मुलुक घनेरो
गोड़ी दिने दै जा,
रुखा सूखा मन न जा, राजीनामा कैजा,
सेरा नेला सैंदी,
रोसाई मनाये जांदी मरो नी चैंदी ।
अखोडू की साई,
राज़ी रखी नारैण,
फेर मिलण ताई ।

तेरे जैसे जवान मेरे घांघरे के
कुली हैं ।
मछली मार कर आये,
हुं:, मुंह मोड़ती है । मैंने क्या कह दिया?
बनिया को बोज,
वन की अप्सरायें मोहीं, तू क्या है ?
सेंदूर की डिबिया,
तेरी अकड़ भी कभी देख लूंगी ।
पानी की धारा,
तू न प्रेम करे । दुनिया पड़ी है ।
गाय दहेज में दी,
रूठ कर न जा । मेल करके जा ।
क्यारी मोड़ी गई ।
रूठी मना लेंगे । तू ज़िन्दा रहे ।
अखरोट के पत्ते,
फ़िर मिलने के लिये प्रभु तुझे राज़ी
रखें ।

कभी-कभी गोरी की गहने की चाह भी रंग लाती है । दोनों में खासी नोक-झोंक हो जाती है । सावन-भादों की रात । भैंस खूंटे से खुल गई । सोते स्वामी को जगायें कैसे ? मेरी बात तो कभी सुनते ही नहीं । मैंने कई बार कहा, "इस भैंस के बदले, गहने गढ़वा लो । आराम से सोने को तो मिलेगा ।" 'वे बोले", कहो तो तुम्हें भी बेंच डालूं, और आधी रात "पसरा' चराता रहूं :—

"सौना भदौना की रतिया रे बाबा भइंसि छदानेन छुटान ।
सोवत समिया मैं कंसे जगावउं नींद अकारथ जाइ ।।
कहत कहत मैं हारेउं रे राजा बात न मोरि ओनाउ ।
भइंसि बेचि सामी गहना गढ़उतेउ सोतेउ गोड़वा पसारि ।।
एक बचन तोसे कहौं मोरि धनिया जोरे सुनौ मन लाय ।
तुहउं बेंचि कै भइंसी बसेहतेउं पसरा चरउतेउं आधी रात ।।

नोक-झोंक में गोरी नैहर चले जाने की धमकी भी दे देती है । पुरुष के पास भी इसकी काट है, "मेरे गहने देती जाना ।" गोरी भी खामोश नहीं रहती,

"गहने ही लेने हैं, ले लेना। पर मैं जैसी आई थी, वैसी ही मुझे लौटाना।" गहने तो दूसरे भी आ जायेंगे, पर गया यौवन कहां से आयेगा ? कभी गहने की चाह सब कुछ बेच डालने के लिये भी प्रेरित करती है। अधोलिखित परिहासमय गीत इसका संकेत है :—

"करबी बिकाय हमै लै दो लटकन।
करबी बिकइहै तो बैला का खैहैं ?
बैलो बिकाय हमैं लै दो लटकन।।
बैला बिकइहैं तो खेती कैसे होइ है ?
खेतिउ बिकाय हमें लै दो लटकन।।
खेती बिकइहै, तो लरिके का खइहैं ?
लरिके बिकायं हमैं लै दो लटकन।।
लरिके बिकइहैं तो हम का करबै ?
तुमहूं बिकाव हमें लै देव लटकन।।"

नये समधी पर भी शादी के समय छींटाकशी की जाती है :—

"कुत्ता पाल लियो रे,
हमारे नये समधी।
कुत्ते की पूंछ, जैसे समधी की मूंछ,
जरा ऐंठ लियो रे, हमारे नये समधी।
कुत्ते के कान, ज्यों महोबे के पान,
बीड़ा चाब लियो रे, हमारे नये समधी।
कुत्ते की पीठ, जैसे बंबई की छींट,
कुरता पहन लइयो रे, हमारे नये समधी।

इस प्रकार विभिन्न अंचलों के लोक-गीतों में हास्य की सतरंगिणी छटा बिखरी है। जीवन के विविध पक्षों का प्रवाह, व्यंग्य और हास तथा अनोखी उपमायें मन को सहज लुभा लेती हैं। उसमें आकाश का सहज विकास, और धरती की मुसकान घुली-मिली हैं।

———

उसमान की चित्रावली

—डा. शिवनन्दन कपूर

गाजीपुर, उत्तर प्रदेश के निवासी कवि उसमान १७वीं शती में हुए थे। इनके पिता का नाम शेख हुसैन था। जहांगीर के समकालीन होने के कारण, उन्होंने सूफी परम्परा के अनुसार, शाहे वक्त जहांगीर की "चित्रावली" में प्रशंसा की है। भारतीय नगरों के अंकन के साथ, अंग्रेज़ों के आचार-विचार का भी रोचक वर्णन उनके काव्य में है। भारतीय पर्वों आदि का सूक्ष्म चित्रण उनको उदारता, और पर्यवेक्षण का परिचायक है।

"चित्रावली" में उन्होंने अपने सम्बन्ध में भी लिखा है। उनके नगर गाज़ीपुर में अनेक जातियों के पण्डित, एवं कलाकार रहते थे। उनके पांच भाइयों में शेख अजीज़ विद्या-प्रेमी, इमानुल्लाह योगी, फैजुल्लाह वीर, और शेख हसन संगीतज्ञ थे। गुरू चिश्ती संप्रदाय के सिद्ध बाबा हाजी थे।

"चित्रावली" की रचना १६१३ ख्रिष्टाब्द हि. १०१२ में हुई थी। कवि उसमान ने केवल "चित्रावली" की रचना की थी। कृति-रचना के मूल में यश-अमरत्व की कामना है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है :—

"मोहूं चाउ उठा पुनि हीए। होऊं अमर यह अमिरित पीए॥" पृ० १२

कथा में रोचकता है। कवि उसमान का विचार है कि उनकी यह कृति सभी की कामना-पूर्ति करने में कल्प-वृक्ष के तुल्य, आबाल-वृद्ध को आनन्द देने वाली, तथा जड़ प्रकृति में भी चेतना लाने वाली है :—

"कथा एक में हिए उपाई। कहत मीठि ओ सुनत सोहाई ।।
बालक सुनत कानरस पावा। तरुनन्ह के तन काम बढ़ावा ।।
बिरिध सुनै मन होइ गियाना। यह संसार घंधा जेइ जाना ।।
जोगी सुनै जोग पथ पावा। भोगी कहं सुख भोग बढ़ावा ।।
इच्छा तरु एक ग्राह सोहावा। जेहि जस इच्छा तैस फल पावा ।।
मंजुल मुकुर विमल कर लेखा। जो देखै सो ग्रापुहि देखा ।।"

"चित्रावली" की तीन पाण्डु-लिपियां प्राप्त हैं। पहली काशीनरेश के रामनगर स्थित पुस्तकालय में है। यह आधुनिकतम है। ९ जनवरी १९०९ को यह समाप्त हुई थी। यह प्रति पूर्ण है। ग्रलाईपुर के रमजान मियां के पास भी कुछ प्राचीन प्रतियां मिली हैं। जैसे जायसी ने "टूट संवार' मेरवहु सजा", में विनय व्यक्त किया है; वैसे ही उसमान की पंक्तियां भी दीनता, ग्रौर दंभ से समन्वित हैं :—

"जाकी बुद्धि होइ ग्रधिकाई। ग्रान कथा एक कहै बनाई ।।
कविनन्ह ग्रागे दीन होइ, विनती करौ गहि पाय।
ग्रच्छर टूट संवारेहु, दोषन लियेहु छपाइ ।।"

प्रारंभ में ईश्वर-स्तुति है. पर 'खुदा' शब्द का प्रयोग नहीं है। यह भी उनकी उदार-हृदयता का परिचय देता है। 'नरक से छूटने' का भाव भी हिन्दू विचार-धारा के ग्रधिक निकट है :—

"निजु सो मथनी एक दिन, मथत मथत गा क्रूटि।
तत्वमसी पुनि तत्व सों, नरक जाहिं सब छूटि ।।"

गाजीपुर का वर्णन भी न केवल आत्मीयता लिये है, ग्रपितु संकीर्ण-हृदयता से दूर, विशुद्ध भारतीय श्रद्धा से संयुत है :—

"गाजीपुर उत्तम ग्रस्थाना। देवस्थान ग्रादि जग जाना।
गंगा मिलि यमुना उहिं आई। बीच मिली गोमती सुहाई ।।
तिरधारा उत्तम तट चीन्हा। द्वापर तंह देवतन्ह तप कीन्हा ।।
पुनि कलयुग मंह वसतिग भई। जानहु ग्रमरपुरी बसि गई।
ऊपर कोट हेट सुरसरी। देखते पाप विथा जंह हरी ।।"

मसनवी परंपरा के ग्रनुसार, प्रारंभ में ईश्वर-वन्दना, फिर मुहम्मद साहब ग्रौर उनके चार मीतों, चार खलीफों की प्रशंसा है। शाह निजाम चिश्ती का

स्मरण करते हुए भी उन्होंने अपने गुरु हाजी पीर की ही प्रशंसा की है। जहांगीर के दर्बार-वर्णन में विचित्रता के साथ ऐश्वर्य, और आतंक का समन्वय है। दर्बार में छ ही ऋतुएं हैं। बादशाह सूर्य ग्रीष्म है। हाथी मेघ बन कर वर्षा के प्रतिनिधि हैं। सुन्दरियों का दल शरत है। पराजित गढ़पति हेमंत, उनकी नारियां शिशिर हैं। उमरावों के सुगन्धित तन वसंत को विद्यमान किये हैं :—

"कैहीं न जग पतियाद कोउ, सुनि अचरज संसार।
होंहि छहो रितु एक ठों, जहांगीर दरबार ।।

"चित्रावली" की कथा इस प्रकार है। नेपाल-नरेश धरनीधर पुत्र-हीन हैं। अतः संन्यास का संकल्प लेते हैं। वे अन्न-सत्र चलाते हैं। उनके सौभाग्य से शंकर-पार्वती आते हैं। वर्णन भारतीय विश्वास और श्रद्धा के उपयुक्त है :—

"सुरसरि सीस कलानिधि माथे। फनपति ग्रीव वसह कर नाथे।
रुण्डमाल गल डमरू हाथा। ओ पुनि सिखर सुता धनि साथा।।
लोचन मध्य अगिन अंगारा। जेहि ते मदन भसम सम जरा।।"

उनकी कृपा से 'सुजान कुमार' का जन्म होता है। षष्ठी-पूजा होती है। विद्या-ग्रहण के साथ धनुर्वेद की शिक्षा भी चलती है। उसकी आखेट में रुचि है। एक बार शिकार के समय, आंधी के कारण, वह साथियों से अलग हो जाता है। वह एक पर्वत पर स्थित देव की मढ़ी में पहुँच कर सो जाता है। देव उसकी रक्षा करता है। दूसरे पहर उसका मित्र-एक और देव आता है। वह उसे रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की वर्षगांठ का उत्सव देखने के लिये चलने को कहता है। रूपनगर दक्षिणा-पथ में है। मढ़ी का देव कुमार को छोड़ कर कैसे जाये। अन्त में उसे भी सोते हुए ले जाया जाता है। राजकुमार को वे खाट समेत ले जाकर राजकुमारी की चित्रशाला में सुला देते हैं। आधी रात को राजकुमार जागता है। वहां राजकुमारी का चित्र देख कर, मुग्ध हो कर :—

"कबई सीस पाइ तर धरही। कबहुँ ठाढ़ होइ बिनती करइ।।
कबहुं चाहै अंचल गहा, हाथ न आव अचक मन रहा।

प्रातः जागने पर उसे रात की बात सपना लगती है। किन्तु कपड़ों पर लगा रंग और ही रंग लाता है। स्वप्न की सत्यता पर विश्वास होते ही मन पर प्रेम का रंग चढ़ता है। उधर राजकुमारी भी अपने पैरों के पास बनाये गये राज-कुमार के चित्र को देख कर मुग्ध हो जाती है। नेमिचन्द्र की "लीलावती" में भी

नायक इसी प्रकार नायिका की शय्या पर सुला कर, फिर अपने स्थान पर पहुँचाया जाता है।

राजकुमार के चित्र, और उसके प्रति कुमारी की आसक्ति को बात एक खोजा रानी से कह देता है। रानी उस चित्र को धुलवा देती है। राजकुमारी उस खोजे को सर मुण्डवा कर निकाल देती है। फिर चार खोजों को राजकुमार की खोज में भेजती है। उनमें से एक खोजा नेपाल की धर्मशाला में आता है। वह राजकुमार को पहचानता है। कुमार योगी के वेष में रूपनगर की ओर चलता है। वास्तव में वह योगी के वेष वाला दूत एक परेवा है। वह 'पद्मावती' के दूत की भांति कुमार का पथ-प्रदर्शन करता है। कुमारी और कुमार का मिलन एक शिव-मन्दिर में होता है। दूसरे दिन राजकुमारी द्वारा सिर मुण्डा कर निकाला गया भृत्य कुमार के पास आता है। वह कहता है, "राजकुमारी ने यह जादू का काजल भेजा है। इससे आप बिना बाधा के आ जा सकेंगे।" वह विषाक्त काजल था। उसे लगाते ही कुमार अंधा हो जाता है। भृत्य उसे एक अजगर की गुफा में डाल देता है। अजगर उसे निगलता है। पर विरह से जलते राजकुमार के तन की आग न सह सकने से उगल कर भाग जाता है। एक वन-मानुष उसकी आखों में फिर ज्योति उत्पन्न करता है। हाथी उसे मारना चाहता है। किन्तु उसे एक पक्षी उड़ा ले जाता है। वह उसे सिंधु तट पर फेंक देता है। वहां सिंधुराज की कन्या कौलावती सखियों के साथ खेल रही है। भोजन, प्रेम-निवेदन, फिर सोहिल राजा का कौलावती के लिये आक्रमण विष-यज्ञ आदि प्रसंग आते हैं। सोहिल-वध के बाद, राजकुमार वर-माला प्राप्त कर लेता है। पर रात्रि में कहता है :—

"हौं जोगी जस भंवर दुखारी।
खोजत यहां जो केतकि बासा। बीचहि अंबुज कीन्ह गरासा।।
जौ लौं भौर न केतकि पावं। कौल आस तौ लौं न पुरावै।।"

यहां 'कौल' के श्लेष द्वारा कमल, तथा कौलावती का श्लिष्ट प्रयोग प्रशंसनीय है। कौलावती को कमल कहना भी सुन्दर उपमा है।

उधर चित्रावली के दूत भी खोज में निकलते हैं। पश्चिम दिशा का दूत मुलतान तक जाता है। वहां सिंधी महिरावण के उपासक हैं। वहां से काबुल, खोरासान, श्याम, मक्का आदि भी जाता है। दक्षिणी चर आंग्लों के 'बलन्दीप' की यात्रा करता है। वे शूकर-मांस खाते, तथा शराब पीते हैं। बंगालियों का

वर्णन करते कवि कहता है :—

"सत्र कहं अमिरित पांच हैं, बंगाली कहं सात।
केला कांजी पान रस, साग, माछरी, भात ।।"

गिरनार में दूत से कुमार की भेंट होती है। चित्रावली को समाचार भेजा जाता है। उसकी विनय-पत्रिका लेकर सिद्ध आता है। राजकुमार के साथ कौलावती भी आती है। रूपनगर में चित्रावली से विवाह होता है। अन्त में प्रतिपाद्य प्रेम का वर्णन है :—

"ज्ञान ध्यान मद्धिम सब, जप तप संजम नेम।
मान सो उत्तम जगत जन, जो प्रतिपादइ प्रेम ।।"

मध्यकालीन परम्परा के अनुसार, उसमान ने भी मूर्ति-पूजा को निस्सार बताया है :—

"पाहन पूजि सिद्धि किन पाई। सेमर सेइ सुआ पछिताई ।।"

चित्रावली का वर्णन परम्परागत होते हुए भी मोहक है :—

"भौंह धनुष वरुनी विषबाना। देखि मदन धनु गहन लजाना।
बरुनी बान गड़े जेहि हीये। बहुरि न निकसे जब लहुँ जीये ।।
अधर सुरंग जनु खाए तंबोला। अबहीं जनु चाहे हंसि बोला ।।" पृ. ६१-६४

उसमान अन्य सूफियों की भांति अपने काव्य को दुखान्त नहीं बनाते। उनका कथन है :—

"कविन्ह मरन कथा कै गाई। मोहिं मरत हिय लागु छोहाई ।।
ओ जे प्रेम अमी रस पीया। मरे न मारे जुग जुग जीया ।।" पृ. २३६

काव्य का मर्म ग्रहण करने के लिये उन्होंने वाणी को 'सुबास' एवं श्रोता को षटपद की उपमा दी है :—

"वचन अरथ ह्वै वास समाना। कवि स्रोता ह्वै भंवर समाना ।।"

वस्तुतः उतनी ही तन्मयता से अर्थ-ग्रहण करने पर ही, इस विशाल हृदय एवं विख्यात सूफी कवियों में अन्तिम कृतिकार की कृति का आनन्द लिया जा सकता है।

———

श्री शचीन्द्र उपाध्याय का कथा साहित्य

एक विवेचनात्मक दृष्टि

—दुर्गाशंकर त्रिवेदी

गंभीरतापूर्वक यदि यह कह दिया कि राजस्थान के कथा साहित्य के विकास की अक्षुण्ण परम्परा काफी पुरातन है, तो ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। जहां हिन्दी साहित्य में आज सचेतन कहानी, नयी कहानी, सहज कहानी आदि नयी विधायें नई हैं, वहीं राजस्थानी कहानी 'बात साहित्य' का इतिहास लगभग ६०० वर्षों से भी अधिक आयु भोग चुका है। वह आज भी समय के साथ ही साथ कदम मिलाकर चलता आ रहा है और किसी न किसी सन्दर्भ में कथा साहित्य के वातावरण में बराबर चर्चित रहा है।

इधर हाड़ौती क्षेत्र की आंचलिकता की भीनी गंध को कलम की नोंक पर उतारता एक प्रतिभावान कहानीकार राजस्थान में कथा साहित्य को समृद्ध कर रहा है। इस तरुण कथाकार को शचीन्द्र उपाध्याय के नाम से पाठक पहचानते हैं। श्री शचीन्द्र के कथा साहित्य की सहज प्रवृत्तियों एवं कथानकीय विशेषताओं ने पाठकों को काफी तेजी से आकर्षित किया है।

हाड़ौती के देहाती जीवन की रोज़मर्रा की खट्टी मीठी चरपरी समस्याओं को उन्होंने बहुत नजदीक से महसूस किया है। यही कारण है कि वे उनका चित्रण करने में काफी अंशों में सफल भी रहे हैं। ग्रामीण और मध्यवर्गीय समाज विशेषतः हाड़ौती अंचल के ग्रामों में व्याप्त गरीबी, दैन्य, शोषण, भुखमरी, अंध-

विश्वास और इन सब के बावजूद स्वतंत्रतोपरांत बदलते विश्वासों और परिवेशों का उन्होंने सफलतापूर्वक चित्रण किया है। अभी तक उनकी १५० के लगभग कहानियां यत्र तत्र उच्चस्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त कावेरी, मिट्टी का सिन्दूर, ठुकराये हुए लोग, आंगन की सीमाएं, नामक चार उपन्यास और कांपती सिन्दूर रेखा नामक कहानी संग्रह भी पाठकों के हाथों में है। जो उनकी लेखन क्षमता, विषयगत पकड़ और सम्प्रेषणीय प्रवृत्तियों को परखने में काफी योग दे सकते हैं। राजस्थान साहित्य अकादमी ने 'झुकी हुई दिशाएं' नामक कहानी संग्रह पर कथा साहित्य का एक हज़ार रुपये का पुरस्कार उन्हें प्रदान किया है।

कथा साहित्य की श्रेष्ठता स्वीकारते हुए डा. देवराज उपाध्याय ने कहा है:— "जगत में सार पदार्थ है जीवन, जीवन में है अभिव्यक्ति। अभिव्यक्ति में भी है आत्माभिव्यक्ति, साहित्य और आत्माभिव्यक्ति साहित्य में भी है कथा साहित्य।" सारे अलंकार का आश्रय लेकर व्यक्त की गई यह धारणा श्री शचीन्द्र की कहानियों पर काफी अंशों तक खरी उतरती हैं। उनकी कहानियों में जहां नूतनयुग बोध प्रगटे हैं, वहीं उनका कथाकार अन्त: स्वरों में 'वयं राष्ट्रे जागृयाम्' की हुँकार भरता भी कहानियों में छलक छलक उठता नज़र आता है। उनकी कहानियां नारेबाज कहानियों से काफी आगे की कहानियां हैं, जिन्हें पाठक अपना सहज प्यार सिर्फ कहानी के नाम पर ही देते हैं। यही उनके कहानीकार का सबसे सबल पक्ष है।

हमारे देहाती जीवन की सामाजिक समस्याओं के प्रति उनकी सजगता को देखकर आश्चर्यान्वित होना पड़ेगा। क्योंकि उन्होंने उनका बहुत गंभीरता से अध्ययन करके तब प्रस्तुतीकरण किया है। इस इलाके में व्याप्त सामन्तशाही, अंधविश्वासजन्य कुप्रथायें और इनके साथ ही बदलते हुए जीवन मूल्यों और योजनाओं का परिचय उनकी कहानियों में बड़ी सहजता एवं सजीवता से उभरा है। विद्रूपों पर उन्होंने चोट भी बड़े साहस से की है तो कहीं मीठी मीठी चुटकियां भी ली हैं।

'मिट्टी का सिन्दूर' का नायक सतीश आज के शैक्षणिक माहौल और देश में सुरसा देह सी बढ़ती जा रही बेईमानी से बड़ा विक्षुब्ध है। चारों तरफ फैलती जा रही आपाधापी, स्वार्थ परता और नयी पीढ़ी की कुण्ठाओं से वह चिन्तित सा लग रहा है। लेकिन ग्रामों में जागरण की नयी किरणें बिखेरने का उसका स्वप्न

भी है। इसी स्वप्न की पूर्ति हेतु वह डाक्टरेट त्यागकर सहकारी फार्म स्थापित करके देश के नवयुवकों के सामने एक नये रूप में प्रस्तुत होता है, वह देश सेवा का एक नया ही मार्ग प्रशस्त करता है। उनकी यह सोद्देश्य कृति जन जागृति की दृष्टि से काफी सशक्त और सफल रही है।

'कावेरी'' आपका बहुचर्चित और बेहद लोकप्रिय उपन्यास है। हमारे सामाजिक जीवन के कोढ़ वेश्यावृत्ति को इसमें शचीन्द्र जी ने एक सर्वथा नये परिवेश में प्रस्तुत किया है। कथानक में इतना अधिक सामंजस्यपूर्ण प्रवाह है कि आप एक बार आंखें टिकाकर पढ़ने लगेंगे तो अन्त करके ही उठेंगे। वेश्यावृत्ति के विविध विकसते रहने वाले नये रूपों में से एक रूप इसमें सशक्त रूप से उभरा है। इसके साथ ही साथ देश में व्याप्त बेईमानी, छलकपट, धोखेबाजी, राजनैतिक शोषण वृत्ति आदि का भी आपने सन्तुलित विश्लेषण करते हुए चित्रण किया है। सिर्फ समस्या उठाकर हवा में उछालना उनकी आदत नहीं रही। अतः उन्होंने राष्ट्रभक्ति के रूप में इसमें उन समस्याओं का भी समाधान प्रस्तुत किया है जिसे इस उपन्यास का प्राण कहा जाय तो वह जरा भी अतिशयोक्ति नहीं मानी जाएगी। कथानक इतनी सुदृढ़ पृष्ठभूमि पर उभरा है कि जरा भी अवास्तविकता नज़र नहीं आती। भावनात्मक एकता, सामाजिक विद्रूप, समाजवाद, लोकतंत्र आदि पर भी उन्होंने पर्याप्त प्रकाश डाला है।

'ठुकराये हुए लोग' में आपने शिक्षाजगत में व्याप्त भ्रष्टाचारी माहौल की खाल उधेड़ी है। टूटते, बिखरते, जुड़ते अध्यापक की मनःस्थितियों का भी हिला देने वाला वर्णन आपने किया है। साथ ही स्वतंत्रता आन्दोलन में अपने सामर्थ्य भर सहयोग देने वाले गोपाल को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिस राज नैतिक भाई भतीजावाद और लालफीताशाही का शकार होना पड़ा, उससे आज के जनतंत्र और समाजवाद के नारे खोखले नजर आते हैं। लेखक ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि और पैनी कलम से जो चित्रण किया है—उसे पढ़कर सहसा ही यदि पाठक बेहद विक्षुब्ध हो उठे तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। उपन्यास को पढ़ते समय पाठक का मन जहां आक्रोश से भर उठता है. वहीं इस अंचल में व्याप्त भयानक गरीबी से उसका मन कांप कांप उठता है।

इस उपन्यास में हाड़ौती अंचल के देहातों का जनजीवन अत्यधिक मर्मस्पर्शी स्वरूप में उभरा है, टांक का नवाबशाही का माहौल भी इसमें सजीवता से यत्र तत्र झांकता पाठकों को गुदगुदाता सामन्ती जीवन की गंध बांट जाता है। उसका चित्रण इतना आकृष्ट करता है मानों पाठक उसी जीवन को भोग रहा है।

"आंगन की सीमाएं" आपका सद्य प्रकाशित उपन्यास है जिसमें आपने सामाजिक विद्रूपों पर बड़ी सशक्त चोटें की हैं। क्लर्क जीवन की यह मर्मस्पर्शी कथा है। एक स्थान पर वे कहते हैं "क्लर्कों का जीवन उसे एक गंदे कीड़े से अधिक नहीं दिखाई देता था।" और एक स्थान पर वे कहते हैं—"क्लर्क तो ऐसा कीड़ा है जिसे कोई भी किसी भी समय अपने पैरों से मसल सकता है।" सामाजिक विद्रूपताओं की लेखक ने इसमें बड़े सहजभाव से खुलकर खिल्ली उड़ाई है जो पैनी भी है. चुभती भी है और रहरह कर एक मीठी चुटकी सी भर जाया करती है। जो लगातार दर्द देती रहती है।

"जलदाह" उनका अप्रकाशित उपन्यास है जो काया में भी काफी बड़ा है और केनवास में भी। राजस्थान की आदिम जाति "भील" के जीवन पर आधारित यह एक मर्मस्पर्शी कृति है जिसमें भीलों के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन को लेखक ने बड़ी कुशलता से उभारा है। भीलों के जिस आर्थिक शोषण को लेकर यह उपन्यास प्रारम्भ हुआ है, उस शोषण का अन्त उपन्यास को पढ़ने के बाद भी कहीं नज़र नहीं आता। मेहनत मजूरी कर अपना किसी तरह निर्वाह करने वाली इस वन जाति को अब तक किसी ने इतने निकट से देखा होगा, नहीं कहा जा सकता।

इस उपन्यास के कुछ अंश हिन्दी टाइम्स दिल्ली में प्रकाशित होकर पाठकीय प्यार ग्रहण कर चुके हैं। उन्हें पढ़कर लगता है कि आदिवासी जीवन को अत्यन्त निकटता से समझने में यह कृति अपना महत्वपूर्ण योगदान देगी।

हाड़ौती अंचल में जन्मे, पले और कार्यरत रह कर यहां का सामान्यजीवन शचीन्द्र जी ने स्वयं जीया है। इसलिए इस क्षेत्र को व्यापक रूप से उन्होंने अत्यन्त सजीवता और संजीदगी से अपनी कृतियों में सफल चित्रकार की भांति उजागरित किया है।

मावस के दीप, पड़वा की बाती, लौटी हुई लहर, ठहरी हुई रात, जलदाह, मंगला, पूजा और परछाइयां, नयी कोठी की उदास शाम, उलझी रेखायें, सीलन और सपने, किरण बटोरती सांझ, एक सवेरा, एक अंधेरा, ममता की छांह, जलता सूरज, धुआं, एक हाथ वाली प्रतिमा आदि कहानियों में उन्होंने हाड़ौती के आंचलिक जनजीवन के विविध पक्षों को एक विशिष्ट प्रकार का रंग देकर चित्रित किया है। श्री नरोत्तम नागर ने ठीक ही कहा है—"राजस्थान के नवोदित कथाकारों में शचीन्द्र ने अपूर्व लगन, साहस, अध्यवसाय और प्रतिभा का पूरा पूरा

परिचय दिया है। उन्होंने अपनी कहानियों में आंचलिकता को उभारा और हर प्रकार के नये से नये प्रयोगों से उसे सजीव किया है।"

"ममता की छांह" में उन्होंने विस्थापितों की एक बस्ती का आंखों देखा वर्णन कथात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। देश में आज योजनाओं के विभिन्न कार्य कलापों के माध्यम से जनजीवन नई दिशा ग्रहण कर रहा हैं, पर उस तरफ बहुत कम लेखकों का ध्यान गया है। पर श्री शचीन्द्र जी ने इस नये निर्माणरत माहौल को पैनी निगाह से देखा, परखा और विचारमंथन के नवनीत को तब कलम की नोक पर उतारा है। इस प्रस्तुतीकरण में वे बड़े सफल रहे हैं।

सुप्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर ने शचीन्द्र जी की कहानियों के लिए कहा है—"बड़ी सहज स्थिति की बेहद सहज कहानियां हैं ये। आज के बनावटी साहित्यिक शब्दाडंबर से दूर, कोलाहल और उत्तेजना से परे। सही बात यह है कि यहीं, इसी बिन्दु पर इन कहानियों की शक्ति छिपी हुई है। ये चमत्कृत नहीं करतीं। इन कहानियों में आई स्थितियां, घटनाएं, पात्र—सब जैसे पढ़ते पढ़ते पिघलकर अदृश्य होते जाते हैं रह जाता है क्षोभ से भरा हुआ एक क्षण। नितांत सहज स्थितियों में उस क्षण को खोज लेना ओर उसे कहानी में एक बार फिर जीवित कर लेना ही इन कहानियों की आंतरिक शक्ति है। कहानियों में उभरा क्षोभ चुभने लगता है और तब सोचने के लिए विवश होना पड़ता है कि आखिर यह कैसी अनुभूति है। कहानी के कथ्य तक पहुँचने का यह एक अनूठा रास्ता है।"

उनकी साधना और स्थितियों को गंभीर रूप से पकड़ने की क्षमता को स्वीकारते और उससे प्रभावित होकर डा. रामचरण महेन्द्र ने आशा व्यक्त करते हुए कहा है :—

"राजस्थान के कहानीकार नवीन भावभूमियों और शैलीगत प्रयोगों से साहित्य को समृद्ध कर रहें हैं। उनमें शचीन्द्र उपाध्याय अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निरन्तर सृजनरत रहकर अदा कर रहे हैं। राजस्थान का कथा साहित्य उनसे बहुत कुछ आशा संजोये हुए हैं।"

इस प्रकार आश्वस्त होकर यह धारणा बनाई जा सकती है कि श्री शचीन्द्र की कथात्मक प्रवृत्तियां एवं विशेषताएं कहानीकारों की भीड़ में से उन्हें अलग छांट देती है। हिन्दी कहानी परंपरा में उन्हें अभी कई महत्वपूर्ण कृतियां सौंपनी

हैं। उन्हीं की भावभूमि पर श्री शचीन्द्र उपाध्याय का मूल्यांकन करना न्याय संगत होगा। क्योंकि उनकी कलम निरन्तर साधनारत है। आपकी कई रचनाओं का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

राजस्थान साहित्य अकादमी ने उनकी कथा विधा को पुरुस्कृत करके उनके मूल्यवान सृजन को प्रोत्साहित करने की पहल की है जो वस्तुतः बहुत पहले हो जानी चाहिए थी। खैर, अकादमी ने देर आएद दुरुस्त आएद वाली कहावत अपने ऊपर चरितार्थ करली है।

कहानी पाठकों का स्नेहिल वातावरण उनके कहानीकार को इसी तरह स्नेह देता रहेगा, इस कामना के साथ मैं उनके सृजनशील कथाकार को प्रणाम निवेदित करता हूं।

इन्सान और कुत्ता

—सत्यप्रकाश आनन्द

आप सोचेंगे कि आज यह क्या शीर्षक मुझे सूझा :—सो श्रीमान घबराइए नहीं। उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत, मैं, तुम तथा वह अर्थात् तीनों पुरुषों, एक वचन और बहुवचन में से कोई भी आ सकता है।

घटना ताज़ी ही है और वह ऐसे घटी सुबह मैं शीघ्रता में था क्योंकि मुझे विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हो चुका था कि "साहिब बहादुर" काम की इन्सपैक्शन के लिए स्वयं पधार रहे हैं। इस समाचार से हमारे होश उड़ गए, क्योंकि मैं Petty (छोटे दर्जे का) ठेकेदार जो ठहरा और छोटे कामों में काफी दोष होते हैं। इसी के साथ प्रकृति ने भी छोटे आदमियों की बाहें छोटी ही बनाई होती हैं जो कि साहिब बहादुर की ऊंची मेज तक नहीं पहुंच सकती। इसलिए जल्दी से उठा। मुंह हाथ धोया और श्रीमति जी से हाथ जोड़ कर विनती की, कि रोटी जल्दी मिलनी चाहिए वरना तुम जानती हो कि सब गड़बड़ हो जाएगी क्योंकि 'साहिब' आ रहा है।

पता नहीं कि श्रीमति जी की मोटी बुद्धि में बारीक बात आई कि नहीं लेकिन उन्होंने दो चार चपातियां मुझे तैयार करके दे दीं। मगर भाजी की समस्या अभी बाकी थी और इसके लिए समय नहीं था। अभी अभी रेडियो ने प्रसारित किया, "अगर चार डिग्री और टैम्परेचर गिर गया तो जम्मू में पानी बर्फ बन जाएगा।"

पहले ही भय और शीत के कारण ठिठुर रहे थे, यह घोषणा सुनते ही कम्पकम्पी होने लगी। टिफन की बजाए चपातियां लिफाफे में समेट लीं और अचार मिर्च और प्याज़ भी साथ ले लिए। भागम भाग सड़क पर आया और बस पकड़ने के लिए सरपट दौड़ा तो नहीं मगर चला ज़रूर। रास्ते में पकौड़ियों वाले की दुकान पड़ती थी। ताजा ताज़ा पकौड़ियां और फिर भीनी भीनी खुशबू। पग रुक गए।

"दो दबारे देना भ···ई। जल्दी है।" मैंने कम्पकंपाती आवाज में कहा। दुकानदार ने मेरी तरफ देखा और दबारे लिफाफे में डाल दिए। मैंने रोटी वाला लिफाफा खोला और इसी में दवारे डालने लगा ताकि एक दूसरे को गर्मी से गर्म रहें और किसी उपयुक्त स्थान पर जाकर इनका आनन्द लिया जाए कि एक कुत्ता जो मेरी ही भान्ति काम की खोज में सरपट नज़र आता था, मेरा रास्ता रोक बैठा। अपनी थोथनी से लिफाफे की तरफ़ लपकना चाहा। मैंने उसी वक्त उसकी नोक दबाकर टोक दिया कि खबरदार कोई हरकत न करना। लेकिन तानाशाही सरकार की तरह इस पर कोई भी प्रभाव होता प्रतीत न हुआ। झट पैंतरा बदल कर विनीत दृष्टि से मेरी ओर निहारने लगा जैसे चुनाव के समय राजनीतिक दल लोगों की तरफ देखते हैं। बड़ी नम्र और मधुर आवाज में बोला "मैं एक कुत्ता हूँ। मुझ पर तरस करो। मैंने पीढ़ियों आपकी स्वामीभक्ति की है।" मैंने अपने पेट को दबाते हुए उससे कहा, 'तुम ही इस समय मुझ पर कृपा करो तो अच्छा है। मैं स्वयं भूख के मारे तड़प रहा हूं।"

उसको जैसे मेरे कहे पर विश्वास न आया। अजीब सी नज़रों से मुझे देखने लगा। मैंने कहा, "तुम को मेरी बात पर यकीन नहीं ?" उसने इस बात पर सिर हिलाया। मैंने फिर कहा' "देखो तुम एक कुत्ते हो और मैं ईश्वर की श्रेष्ठ-तम कृति अर्थात् मनुष्य···," इस बात को तुम मानते हो कि नहीं···?"

कुत्ता झट बोला, "क्यों नहीं यह तो साफ सामने नज़र आ रहा है।"

"तो ठीक है।" मैंने कुछ सहमति और सन्तोष से उत्तर दिया, "वर्तमान युग में कुत्ते की स्थिति मनुष्य से कहीं बेहतर है।" कुत्ते ने अपनी आंखें फिराईं अर्थात् घुमाईं। बात जारी रखते हुए मैंने कहा, 'उदाहरण दे देता हूं··अगर सड़क पर कुत्ता मर जाए तो सब लोग अफसोस करते हैं···बेचारा ट्रक के नीचे आकर कुचला गया···देखो आंतें किस बुरी तरह बिखर रही हैं आदि और अगर इन में से कोई बहुत ज्यादा सहानुभूति वाला हो अर्थात् जिसका इस वंश से बहुत

मेल मिलाप हो हो तो शायद ड्राईवर को, जो एक मनुष्य ही होता है, वीरगति प्राप्त करने पर बाध्य कर दे। और इसी प्रकार की घटना किसी बेचारे मनुष्य के साथ हो जाए तो यही मनुष्य जो कुत्ते के वंश से इतनी सहानुभूति दिखा रहे थे "पता है क्या कहेंगे ?"

"क्या ?" कुत्ते ने मुंह फैला कर कहा।

"पता नहीं ये ज़ंगली कहां से शहर में आ जाते हैं। सड़क पर चलने का भी ढंग नहीं। मरेंगे भी तो चौक में ताकि सारा याता-यात रुक जाए। आदि-आदि तुम अपनी ओर से लगा लो।"

मुझे ऐसा महसूस हुआ कि हज़रत कुत्ते को कुछ विश्वास होने लगा है।

मैंने फिर कहा, "जाते जाते एक बात पते की और तुम्हें बता दूं अगर यह रोटी मैं तुमको दे भी दूं तो मैं भूखा रहूंगा। और अगर मैंने किसी से विनती कर भी दी तो मुझे हजरते इन्सान से वे कटाक्ष सुनने पड़ेंगे कि तोबा भली। और फिर मनुष्य के नाते मेरी खिल्ली उड़ाएंगे।" मैं अभी कुछ और बिन्दु, जीवन से सम्बन्धित, उस पर स्पष्ट करना चाहता था कि वह खिसक गया। अभी मैं अपनी योग्यता पर पूर्णतया गर्व भो न कर पाया था अर्थात् इस घटना से अभी तक पूरी तरह संभल भी न पाया था कि एक मसकीन सूरत सामने आ खड़ी हुई। उसे भी ताज़ा रोटी और ताज़ा दबारों को सोंधी-सोंधी खुशबू बल्कि भीनी-भीनी सुगन्ध ने शायद बेहाल कर दिया था।"

मैं झट ताड़ गया। सोचने लगा, "कुत्ते ने तो छोड़ दिया मगर इन्सान··· इन्सान नहीं छोड़ेगा।" मैंने रोटी वाला लिफाफा थैले में डाला और भाग निकला। रास्ते में अपने ही एक दोस्त से टक्कर हो गई। गिरते गिरते बचा।

उन्होंने हैरानगी से मेरी तरफ देखा और पूछा, "कुशल तो है ? आज यह क्या माजरा है ? सुबह सुबह क्या सेहत बनाई जा रही है ?"

मैं एक फीकी सी खिसियानी सी हंसी हंसा और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वह थे ज़रा फिलासफर से। कहने लगे, "इसमें कुछ नई बात नहीं।" उसने हाथ में पकड़ी हुई किताब खोली और उसका सफा ९९९ खोल कर एक वाक्य दिखाया उसके नीचे सुर्ख रेखा थी। रूसी साइंसदानों का मत लिखा था।

"विकास के सिद्धांतानुसार कुत्ता इन्सान बनता जा रहा है और इन्सान···।

———

कश्मीर अपने दर्पण में

—श्याम कुमार "बादल"

प्रस्तावना

जम्मू-कश्मीर प्रदेश को "भारत का स्वर्ग" और "एशिया का क्रीड़ा-स्थल" कहा जाता है। यह वही कश्मीर है जो सिकंदर और गजनी का सपना बना रहा। सम्राट अशोक ने इसको बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र बनाया। ललितादित्य और अवन्तिवर्मन का नाम भी कश्मीर के इतिहास में प्रसिद्ध है। मुगल शासकों में अकबर, जहांगीर और शाहजहां ने भी कश्मीर को अपना आवास बनाया था। मुगल उपवनों में मुगलकालीन वैभव की झलक मिलती है। १७५० में कश्मीर को अहमद शाह अब्दाली ने विजित किया इसके बाद १८१९ से १८४६ तक सिखों के कब्जे में रहा। सिखों के बाद कश्मीर डोगरा शासकों के अधिकार में रहा। डोगरा शासकों में महाराजा रणजीत देव के बाद महाराजा गुलाबसिंह और महाराजा रणवीर सिंह ने कश्मीर को सुदृढ़ शासन प्रदान किया। महाराजा प्रताप सिंह और महाराजा हरिसिंह के बाद के शासन काल में भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् कश्मीर स्वतन्त्र भारत का अटूट अंग बना और स्वतन्त्रता तथा लोकराज के सुखद समीर में पनपने लगा।

आज जम्मू व कश्मीर भारत का सुन्दर भू-भाग है यहां गगन चुम्बी हिमाच्छादित मालाएं अपना मस्तक ऊंचा उठाये खड़ी हैं। कलकल करती वितस्ता और चन्द्रभागा नदियां और डल-वूलर,नगीन झीलें अपना सौंदर्य बिखरा

रही हैं। चारों ओर सघन सुरम्य वन फैले हुए हैं और चील, चिनार और देवदार की दूर २ तक फैली वृक्षावलियां आने वाले अतिथि के स्वागत में पंक्तिबद्ध खड़ी हैं। वन और उपवन रंग बिरंगे फल और फूलों से भरे पड़े हैं।

कश्मीर भारत का भाल है जो अपने में प्राकृतिक सौंदर्य लिये हुए है। इसके सौंदर्य की गाथा लिख पाना सहज नहीं है। फिर भी हर साहित्यकार काश्मीर घाटी के सौंदय को अपने माध्यम से प्रकट करता है।

मेरी आंखों में बाल्यकाल से कश्मीर का एक चित्र बना हुआ था। इसको देखने की लालसा किसको नहीं? मैंने भी अपनी आंखों से जम्मू-कश्मीर प्रदेश को देखा वही अपने शुभचिन्तकों पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

१० मई ७१ का वह दिन मेरे लिये चुनौती बनकर आया और मैंने भी चुनौती को स्वीकार कर एक छोटा सा संकल्प अपने हृदय में बिठाकर "भारत-दर्शन-यात्रा" को निकल पड़ा। मन्दसौर (मध्यप्रदेश) से राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, पंजाब का भ्रमण करके कितनी ही मानवीय घटनाओं से संघर्ष करके पठानकोट आया। कुछ समय में ही पठानकोट की सड़कों पर उड़ती हुई धूल ने मुझे परेशान कर डाला। यहां आकर शिमला की तस्वीर मेरे सामने आ रही है। साथ ही मेरे सामने कश्मीर का चित्र भी है और अपने कर्त्तव्य-पथ का पालन करना है। यही सोचकर पठानकोट से जम्मू १०८ कि० मी० दूर की यात्रा आठ घण्टे में ही अपनी सायकल से कर डाली और जम्मू आ गया। पठानकोट और जम्मू के बीच की मुख्य सड़क को पार करना भी बड़ा विचित्र सा लगा। चारों ओर दूर २ तक सनाटा, धूप में चमकती बालू और चट्टानें, पानी का दूर २ तक नाम नहीं प्यास बहुत लगी तो साम्बा में चाय-नाश्ता किया फिर चल पड़ा। इस मध्य कई मजबूत पुलों से भी गुजरना पड़ा। पुलों के सिरों पर बी० एस० एफ० तथा केन्द्रिय सुरक्षाधिकारियों को कर्त्तव्यपालन में संलग्न पाया। कुछ अधिकारियों ने मुझसे परिचय भी लिया। वैसे में "अपनी पुस्तक सबके लिये खुली रखना पसंद करता हूँ"। बाल्यकाल में बनी हुई झेलम-चिनाब- शालीमार-निशात डल झील श्रीनगर कश्मीर ... ... मेरे सपनों के कश्मीर की जो तस्वीर थी, उसे आज में प्रत्यक्ष देखने की लालसा एवं संकल्प लेकर आया हूँ। मेरा भारत मेरी आंखों में साकार बन रहा है।

जम्मू आकर कई केन्द्रिय तथा राज्याधिकारियों से भेंट की। साथ ही जम्मू विश्वविद्यालय के हिन्दी तथा सस्कृत विभाग एवं डी० ए० वी० हाईस्कूल के छात्र-छात्राओं को यात्रा संस्मरण एवं रचनाऐं सुनाईं।

जम्मू के बाद उधमपुर गया। जिस रोज उधमपुर पहुँचा उस समय रात्रि को केवल १५ मिनिट बाद ही 'ब्लैक आउट" का अभ्यास होने वाला था। जैसे-तैसे १० मिनिट में धर्मशाला में ज़ाकर कमरे को सफाई करके सायकल और सामान रखा।

"ब्लैक आउट" के बाद भोजन किया और थकान की अधिकता से रात्रि विश्राम किया।

दूसरे दिन सुबह उधमपुर से चल पड़ा और रात्रि विश्राम बटोत के करीब १० कि. मी. दूर जंगल में किया। रात का सन्नाटा और गहन अंधेरे ने मुझे अपने वातावरण में डुबोना चाहा। मगर मेरी आंखों में नींद नहीं है। रात बड़ी मुश्किल से गुज़री। दूर २ तक पानी का नामो-निशान नहीं है और पहाड़ टूट २ कर सड़क पर फैले पड़े हैं। धूल में सारा शरीर लथपथ हो गया सांस लेने में भी कठिनाई हो गई। पास में ही बहुत बड़ी गहरी खाई है और ऊंचे २ पहाड़ अपनी बुलन्दी दिखाकर मुझे चुनौती दे रहे हैं। रात्रि के अंधेरे में कोई पशु पक्षी तक नजर नहीं आया। रात के अंधेरे में सड़क पर कुछ भी दिखाई नहीं देता। सायकल से सड़क पर ५-७ बार गिर भी पड़ा और साथ ही मेरा थोड़ा सा सामान भी अंधेरे में कहीं खो गया। करीब आधी रात के बाद ३-४ दुष्टों ने मुझे मारपीट की, मेरा सामान तितर-बितर कर दिया और मेरी जेब तलाशी में मेरे ७० रु. छीन लिये। जैसे तैसे रात गुजारी और अपने संतुलन को बनाये रखा। सुबह हुई, तो सड़क पर ही एक पक्का सिमेण्ट का भवन देखा वह एक शिव मन्दिर है। मन में एक प्रेरणा जाग उठी और चल पड़ा। उधमपुर और बटोत के बीच पत्तनीटाप की बहुत ऊंची चढ़ाई है करोब ६०-७० कि. मी. तक की यात्रा में काफी पद-यात्रा भी करनी पड़ी। बीच बीच में कई खतरनाक मोड़ और वाहनों से बचाव करता हुआ बढ़ता गया। पत्तनी टाप से रामबन तक जाते हुए उतराई मिली। सायकल पर बैठ कर मैं हवा में झूलने लगा। ऊंचे-ऊंचे पहाड़, बड़ी-बड़ी चट्टानें, चील-देवदार के वृक्षों की लम्बी-लम्बी कतारें और सफेदे के वृक्ष खड़े हुए कश्मीर घाटी का परिचय दे रहे हैं। गुज्जर और गुज्जरियों का

पहनावा बड़ा विचित्र सा लगा। कहीं कहीं कुछ लद्दाखी लोग भी आ जा रहे हैं इनका पहनावा भी विचित्र है।

बनिहाल से फिर दूसरी सुबह चल पड़ा। बनिहाल से १६ कि. मी. दूर "जवाहर टनल" तक पद यात्रा की। जवाहर टनल की चढ़ाई भी पत्तनीटाप की तरह थकान वर्धक रही। कई पहाड़ियों पर ऊंची ऊंची बनी हुई सड़कें, चारों ओर पहाड़ ही पहाड़ और झिलमिलाती धूप मुझे अपने आंचल में समेटने का प्रयत्न कर रही है: "मिलट्री" गाड़ियां एक-एक करके लगातार सैकड़ों की संख्या में मेरे पास से गुजर रही हैं। मेरे वीर जवान "भारत यात्रा" का "साइनबोर्ड" पढ़कर मुझे अपनी शुभकाभनायें देते जा रहे हैं। मैंने प्रेरणा पाकर जैसे तैसे, ३८५० फीट लम्बी जवाहर टनल की सुरंग को पार कर डाला। सुरंग के पार होते ही कश्मीर घाटी के मनोहारी प्राकृतिक दृश्यों ने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया। काजीगुण्ड और खनाबल होकर श्रीनगर पहुँचा। श्रीनगर जम्मू-कश्मीर की ग्रीष्मकालीन राजधानी में जैसे ही पहुंचा शाम हो चुकी थी, लालचौक में रात्री विश्राम किया।

श्रीनगर करीब २० दिन ठहरा। यहां कई शासकीय अधिकारियों, मंत्रियों साहित्यकारों व पत्रकारों से भेंट की। साथ ही केन्द्रिय विद्यालय बटवारा तथा डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल के छात्र छात्राओं को यात्रा संस्मरण तथा रचनाएं सुनाईं।

श्रीनगर के बाद बारामूला गया। कई अधिकारियों एवं पत्रकारों से भेंट की। साथ ही शासकीय हायर सैकण्डरी स्कूल (Boys) तथा शासकीय हाई स्कूल (Girls) के छात्र-छात्राओं को अपनी यात्रा संस्मरण और रचनाएं सुनाईं। छात्र-छात्राओं ने हिन्दी की रचनाएें पसंद नहीं की, क्योंकि यहां कश्मीरी, डोगरी और उर्दू भाषा का प्रचार अधिक है। कश्मीर घाटी में कश्मीरी भाषा अधिक बोली जाती है। इस घाटी में हिन्दु कम और मुसलमान अधिक संख्या में रहते हैं। बारामूला से ४६ कि० मी० दूर उड़ी सैक्टर है और २५ कि० मी० दूर रामनगर है। चारों ओर ऊंचे २ पहाड़ फैले हुए हैं। जेहलम नदी अपने आंचल में कितनो ही घटनाओं को छिपाये हुए है। हिमालय की चोटियों से घिरा बारामूला अपने आपमें सुरक्षित है, यहां ही मकबूल शेरवानी १९४७ में पाकिस्तानी आक्रमकों के हाथों शहीद हुआ था सीमावर्ती क्षेत्र होने के कारण बारामूला और उड़ी सैक्टर का एक बहुत बड़ा महत्व है। उड़ी सैक्टर के बाद ही जंगबन्दी सीमा शुरु हो जाती है, इसलिए वर्तमान स्थिति में उड़ी क्षेत्र का

महत्व और अधिक है। सुरक्षा दल सीमा पर सुरक्षा के लिये तत्पर है। युद्ध की आशंका से अधिकारियों ने मुझे उड़ी सैक्टर का भ्रमण करने से मना किया साथ ही मेरे शुभचिन्तकों ने मुझे शीघ्र ही दिल्ली चले जाने को सलाह दी। फिर भी मैं बारामूला में १५ दिन तक रहा। प्रथम सप्ताह में ५-६ दिन तक बराबर ठंडी २ हवाऐं अपनी प्रखरता से मेरे शरीर को बेधती रहीं। ४-५ दिन तक तो बहुत बर्फ गिरी, साथ ही जेहलम का दरिया बर्फ सा ठंडा था। नहाने की हिम्मत नहीं होती थी। मुंह धोना तक मुश्किल हो जाता था। दिन भर आग के सामने या "कांगड़ी" लेकर बैठना पड़ता था। लोग सर्दी से बचाव के लिये ऊनी "फैरन" पहनते हैं और हाथों में दिनरात "कांगड़ी" पकड़े रहते हैं। कश्मीर के निवासी चावल और मांस अधिक खाते हैं। हिन्दुओं में कश्मीरी पंडित अधिक होते हैं।

बारामूला से श्योपर तहसील और गुलमर्ग का अवलोकन किया। जिस दिन गुलमर्ग गया उस दिन काफी ठंड थी। पहाड़ों पर चारों ओर बर्फ ही बर्फ फैली हुई थी। वर्षा के करण काफी परेशानियों का सामना करना पड़ा। मौसम काफी बदल गया, सर्दी विकराल होने लगी और कहीं आगे न जाकर वापस श्रीनगर आया। श्रीनगर में आकर फिर सर्दी का सामना करना पड़ा। फिर भी डल झील, वूलर झील, नगीन झील, हजरतबल, हरिपर्वत दुर्ग, शंकराचार्य, चार-चिनार, नेहरू गार्डन, म्यूजियम, शालिमार बाग, निशात बाग, नसीम बाग, तथा चश्माशाही का अवलोकन किया। जिस दिन शालीमार और निशात बाग देखने गया उस रोज गगन में मेघ छाये हुए थे और पर्वतमालाएं अपने हरियाली के आंचल में बहुत सुन्दर लग रही थीं, और बागों में खिले हुए फूल अपनी मोहक सुगंधी में मुझे मोहित कर रहे थे। मैं काफी देर तक शालीमार में बैठकर काश्मीर घाटी का आनंद उठाता रहा। अंधेरा घिरने लगा, ठंडी २ हवाएं भी अपने थपेड़ों का प्रहार करने लगी तो बगीचे में ही एक प्याला चाय का होटल में पिया और वापस चल पड़ा अपनी मंजिल की ओर...।

श्रीनगर में करीब १२ दिन तक रहने के बाद फिर खन्नाबल में जैसे ही आया तो पता चला कि आधे घंटे के बाद ही "ब्लैक आउट" होने वाला है इसलिये खन्नाबल में रात्रि विश्राम एक सरदार के होटल पर किया। फिर दूसरे दिन सुबह अनंतनाग आया।

अनंतनाग से मट्टन (मार्तण्ड) देखने गया और वहां के शासकीय हाईस्कूल (Boys) के छात्रों को यात्रा संस्मरण और रचनाएं सुनाई। अनंतनाग से ही

कोकरनाग का चश्मा ग्रौर "स्प्रिग गार्डन" ग्रौर अच्छाबल का "मुगल गार्डन", देखने गया। ग्रनंतनाग में "सल्फर-स्प्रिग" (गन्धक का चश्मा) और रघुनाथ मंदिर देखा। साथ ही हायर सैकण्डरी स्कूल (Girls) और एम० एल० हायर सैकण्डरी स्कूल (Boys) के छात्र-छात्राग्रों को भी यात्रा संस्मरण और कविताएँ सुनाईं।

अनंतनाग के बाद बैरीनाग का चश्मा ग्रौर हिमाच्छादित पर्वत मालाग्रों की लम्बी कतारों को देखा। पहाड़ों पर बर्फ सूर्य की किरणों से चांदी की तरह चमक रही है लगता है कश्मीर घाटी में चांदी के पहाड़ खड़े हैं। वैरीनाग की आबादी से पहाड़ बहुत समीप लगते हैं। यहां भी सर्दी का सामना करना पड़ा और शासकीय हाईस्कूल के छात्र-छात्राग्रों को यात्रा संस्मरण और रचनाएं सुनाई। २ दिन में वैरीनाग का प्राकृतिक आनंद उठाया और जवाहरटनल आया।

पट्टन ग्रौर अवन्तिपुर के एतिहासिक खण्डहर सदियों पुरानी अपनी गाथा आने जाने वालों को सुनाते हैं मगर खण्डर आखिर खण्डहर होकर वर्षों से मौन खड़े हैं। आज किसको इतनी फुर्सत है जो अपना समय गंवाकर इन खण्डहरों की कहानी सुने। फिर भी इतिहास को सत्य रूप देने के लिये ये खण्डहर साक्षी बनकर खड़े हैं।

जवाहरटनल का रास्ता पार करने में बड़ी कठिनाई पड़ी। "टनल" में ग्रंधेरा ही अंधेरा भरा था ग्रौर बीच २ में कहीं २ पानी की बूंदे टपक रही हैं। रास्ता दिखाई नहीं दे रहा, फिर भी बड़ी कठिनाई से ट्रक की लाईट से ३५८० फीट लम्बी सुरंग को पार कर डाला। इसके बाद बनिहाल होता हुग्रा रामबन आया। रामबन में करीब ३ दिन तक रहा ग्रौर यहां के शासकीय हाईस्कूल के छात्रों को यात्रा संस्मरण और रचनाएं सुनाईं। रामबन वास्तव में कवि-हृदय के लिये शान्ति दायक एवं प्ररेणाप्रद है। चिनाव के बहते हुए नीले शीशे की भांति जल बड़ा सुन्दर लगा ग्रौर पहाड़ों पर सौंदर्य बिखरा पड़ा है चारों ग्रोर हरियाली ही हरियाली फैली हुई है। पानी में बड़े २ चील की लकड़ी के टुकड़े बह रहे हैं। बड़ी २ चट्टानें अपने विभिन्न आकारों में आकर्षित करती हैं।

रामबन का प्राकृतिक सौंदर्य ग्रौर चिनाब का दरिया मन को खूब भाया।

रामबन के बाद २८ कि० मी० दूर बटौत आया। काफी ऊंची चढ़ाई होने के कारण सायकल को हाथों में पकड़कर पदयात्रा की। यह कश्मीर घाटी की ऊंची चढ़ाई है। बीच २ में दूर २ तक जंगल ही जंगल, चील और देवदार की

लम्बी २ कतार हैं। कहीं २ बड़े खतरनाक मोड़ और पहाड़ों का फैला हुआ जाल मुझे बांधने को आतुर लगा तथा कितनी ही भूल भूलैयों में गुजरकर पसीने में लथपथ होता हुआ, कमरतोड़ चढ़ाई से चढ़ी थकान को साथ लेकर शाम को करीब ५ बजे तक बटौत आया और रात्रि विश्राम "टूरिस्ट सैंटर" में किया।

दूसरे दिन सुबह फिर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो गया। बटोत से पतनीटाप की चढ़ाई बड़ा कठिनाई से पैदल चलकर पार की। वैसे पतनीटाप और जवाहरटनल की चढ़ाई से भी ज्यादा ऊंची चढ़ाई हिमाचल प्रदेश में मिली मगर मेरे लिये उत्तरी भारत की यात्रा में पतनीटाप काश्मीर घाटी की सबसे ऊंची घाटी रही।

पत्तनीटाप के "टूरिस्ट-हटस्" से जो सायकल पर बैठा, तो उधमपुर तक हवा से बातें करता हुआ और कई भयंकर मोड़ और वाहनों से सावधानी पूर्वक निकलता हुआ शाम को कुद होता हुआ ऊधपपुर आया।

उधमपुर में भी २ दिन तक रहा। यह भी काफी ऊंचाई पर बसा हुआ है। यहां से पर्वत मालाएें साफ २ दूर २ तक फैली हुई दिखाई देती हैं। यहां भी एम० एल० हायर सैकण्डरी स्कूल (Boys) और शासकीय हायर सैकण्डरी स्कूल (Girls) के छात्र-छात्राओं को यात्रा संस्मरण एवं रचनाएं सुनाईं। यहां आकर छात्र-छात्राओं में राष्ट्रीय-भावना का अवलोकन किया। यहां के निवासियों में शत्रु से बदला लेने की भावना बड़ी प्रबल मात्रा में देखी।

उधमपुर से गढ़ी, रैम्बल, माण्ड, टिकरी, मन्थल, झझर कोटली, दोमेल, नन्दिनी और नगरोटा होकर वापस जम्मू आया। टिकरी और नन्दिनी के मध्य प्राकृतिक सौंदर्य देखकर बागमूला और रामबन के दृश्य आंखों में तैरने लगे।

जम्मू आकर फिर अधिकारियों, साहित्यकारों, एवं अपने शुभचिंतकों से भेंट की, साथ ही गवर्नमैण्ट वूमेन कालेज परेड ग्रौण्ड, गवर्नमैण्ट वुमेन कालेज गांधीनगर और श्री रणवीर हायर सैकण्डरी स्कूल के छात्र-छात्राओं को यात्रा संस्मरण और रचनाएं सुनाईं। यहां के प्रसिद्ध रघुनाथ मंदिर श्री रणवीरेश्वर मंदिर और शिव मंदिर देखे।

इस प्रदेश में कश्मीरी, उर्दू, पंजाबी और हिन्दी की श्रेणी में डोगरी भाषा का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। डोगरी साहित्य का विकास और प्रचार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। इसका श्रेय "डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट" रघुनाथ

मंदिर जम्मू को है। इसके मुख्य संरक्षक केन्द्रिय मन्त्री डा० कर्णसिंह हैं जिनके संरक्षग में यह संस्था पनप रही है। डोगरी साहित्य के विकास में डा० कर्णसिंह श्री नीलम्बर देव शर्मा, श्री श्यामलाल शर्मा, प्रो० शक्ति शर्मा, श्री राम नाथ शास्त्री, श्री केहरसिंह 'मधुकर'', श्री दीनु भाई पंत, श्र। वेद राही, श्री जितेन्द्र शर्मा, श्री मोहनलाल सपोलिया, श्री तारा स्मैलपुरी, श्री भगवत प्रसाद साठे, श्री अनंतराम शास्त्री, श्री शुकदेव शास्त्री, श्रीमती पद्मा सचदेव, श्री चंचल शर्मा, श्री सुभाष भारद्वाज, श्री ओंकारसिंह "ग्रावारा", श्री यश शर्मा, श्री विश्वनाथ खजूरिया, श्री मदनमोहन, श्री बालकृष्ण चोहान तथा कुमारी सुदेश शर्मा ग्रादि संलग्न हैं।

डोगरी कथा साहित्य के अनुवाद का सिलसिला भी जोर पर है। मेघदूत वेताल पचीसी ग्रौर राजगोपालचार्य कृत महाभारत ग्रनुवादक श्री श्याम लाल शर्मा, रामायण अनुवादक श्री रामनाथ शास्त्री, गोर्की की कहानियां अनुवादक मदनमोहन ग्रौर पंचतंत्र सार अनुवादक श्री अनंतराम शास्त्री सुन्दर अनुवाद हैं। साथ ही डोगरी के कई युवक साहित्यकार भी डोगरी के उत्थान मे प्रयत्नशील हैं। डोगरी का भविष्य बड़ा उज्वल है।

जम्मू-कश्मीर प्रदेश में मैंने देखा, कि यहां समाचार पत्रों की लिपि उर्दू अधिक है साथ ही ग्रंग्रेज़ी सामाचार पत्रों की संख्या बहुत कम है। इस प्रदेश में कश्मीरी, डोगरी, उर्दू, पंजाबी, लद्दाखो के साथ २ हिन्दी का भी विकास हो रहा है। सारे भारत के कोने २ में हिन्दी का प्रचार-प्रसार है। जम्मू-कश्मीर प्रदेश भी कश्मीरी, डोगरी, और हिन्दी साहित्य की सेवा में संलग्न हैं। साथ ही उर्दू के भी मशहूर शायर अपनो साधन में जुटे हुए हैं। जम्मू-कश्मीर प्रदेश में संस्कृत साहित्य के महारथी मम्मट, उद्भट, कल्हण तथा अभिनव ने अपनी यश पताका को फहराया है साथ ही कश्मारी में हब्बा खातून, लल्लेश्वरी, महजूर और ग्राज़ाद मास्टर जिंदा कौल की गणना को भी नहीं भुलाया जा सकता। हिन्दी के भी सर्व प्रथम कवि श्री वल्लभदेव ने तुलसीकृत रामचरित मानस का हिन्दी में अनुवाद किया और श्री कवि दत्त ने १८२३ में महाभारत के द्रोण पर्व का हिन्दी पद्यानुवाद "वीर विलास" नाम से किया। कवि दत्त की रचनाओं में "ब्रजराज पंचाशिका", "दत्त संग्रह", "भूप वियोग", "रघु चन्द्रिका" और "ऋतु वर्णन" अदि प्रसिद्ध हैं। इसके साथ ही हिन्दी की सेवा कश्मीरी भक्त कवि परमानंद ने भी "राधा स्वयंबर" काव्य और कृष्ण राजदान ने "शिव लग्न" लिखकर की है। हिन्दी प्रेमियों में श्री हलधर ककरू,

श्री ठाकुर जी मनवटी, मास्टर जिंदा कौल और कवि दत्त के पुत्र शिवराम तथा प्रपौत्र श्री त्रिलोचन का नाम भी लिया जाता है।

इसके बाद इस प्रदेश में हिन्दी कविता का एक या युग आरंभ होता है मेरे सामने इस प्रदेश के हिन्दी प्रेमियों की श्रेणी में कई नाम उभर २ कर आ रहें हैं। मैंने जिन हिन्दी प्रेमियों से साक्षात्कार किसा उनमें श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प" श्री पृथ्वीनाथ "मधुप" श्री शशिशेखर तोषखानी, श्री नीलम्बर देव शर्मा, श्री डा० रमेश कुमार शर्मा, श्री मोहन "निराश' श्री हरिकृष्ण कौल, श्री ज्योतीश्वर "पथिक", श्री दीनूभाई पंत, श्री चमनलाल सप्रू, श्री प्यारे "हताश", श्री काशीनाथ दर, श्री जानकीनाथ 'कमल", श्री डा० अयूब "प्रेमी", श्री डा० संसारचन्द्र, डा० वेद कुमारी, डा० जनककुमारी गुप्ता, डा० कौशल्या वल्ली, प्रो० शक्ति शर्मा, श्री धर्मचन्द्र "प्रशान्त", श्री मनसाराम "चंचल", श्री डा० ओमप्रकाश गुप्त, श्री ओमप्रकाश शर्मा, श्री श्याम लाल शर्मा, श्री डा० गंगादत्त "विनोद", कुमारी उषाव्यास "छवि", श्री ओम "मानव", श्री सुतीक्षण कुमार "आनंदम" तथा श्री रमेश मेहता आदि हिन्दी की सेवा में जुटे हुए हैं।

इनके साथ २ श्री रतनलाल "शांत" श्री वीरेन्द्र विमल, श्री जितेन्द्र उधमपुरी, श्री सुभाष भारद्वाज, शकुन्तला सेठ, दुर्गादत्त शास्त्री, श्री अनंत मराल शास्त्री, श्री शंकर शर्मा "विपासु", श्री चन्द्रकांत जोशी, श्री राजेन्द्र मोहन कौशिक आदि भी हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में लगे हुए हैं। मां भारती सबको प्रेरणादायक बनी रहे।

उपरोक्त सभी साहित्यकारों में अपनी २ विशेषता भरी है, कुछ परंपरागत कविता और गीतों का सहारा लेकर चल रहे हैं, कुछ नई कविता के महारथी बनकर चल रहे हैं। कुछ प्रगतिवादी हैं, तो कुछ शृंगार और अन्य रसों को अपनी रचनाओं में विषय बनाकर दौड़ रहे हैं। सभी के अपने एक से अधिक संकलन प्रकाशित हैं और कई संकलन प्रकाशनार्थ तैयार हैं शीघ्र ही देखने को मिलेगें।

इसके इलावा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और हिन्दी साहित्य मण्डल भी समय २ पर हिन्दी कविसम्मेलन और गोष्ठियों के माध्यम से हिन्दी के प्रचार-प्रसार करने में संलग्न हैं। साथ ही प्रदेश की साहित्यक कला तथा सांस्कृतिक अकादमी भी अपने प्रदेश के साहित्यकारों को पारितोषक और प्रकाशन सुविधाएं प्रदान करती है। आकाशवाणी जम्मू केन्द्र भी हिन्दी साहित्य की वृद्धि में

तत्पर है। पिछले दिनों १९ नंम्बर ७१ को मेरी दो रचनाऐं आकाशवाणी जम्मू केन्द्र द्वारा प्रसारित को गई हैं।

साथ ही अकादमो द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक "शीराज़ा", कश्मीर विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग की ओर से प्रकाशित "वितस्ता", फील्ड सर्वे संगठन की ओर से प्रकाशित "डुग्गर समाचार" एवं धर्मार्थ ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित "धर्ममार्ग" भी हिन्दी को सेवा में काफी योगदान दे रहे हैं।

सारांश –

मैंने लगभग ३ माह जम्मू-कश्मीर प्रदेश की यात्रा की, इस क्षेत्र में कश्मीरी भाषा का प्रचार अधिक होने से कश्मीर घाटी के निवासियों की बोली समझ में नहीं आने से काफी काठिनाइयों का सामना करना पड़ा। साथ ही जो स्नेह और सहयोग साहित्यकारों एवं शिक्षण संस्थाओं से मिला या शुभचिंतकों से मिला वह स्मरणीय रहेगा। राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, पंजाब और हिमाचल प्रदेश की राज्य सरकारों ने जो मुझे शुभकामनाऐं एव सहयोग दिया, वैसा सहयोग जम्मू-कश्मीर की राज्य सरकार से नहीं मिला।

आजकल हमारा भारत एक बड़े नाज़ुक दौर से गुजर रहा है। देश के ऊपर कई संकट मंडरा रहे हैं। युद्ध की आशंकाए लोगों में फैल रही है, फिर भी भारत का हर नागरिक शत्रु से लोहा लेने को तैय्यार है। सच्चा देश भक्त नागरिक वही है, जो देश के संकट के समय अपने तन, मन और धन से समर्पित हो सके। जम्मू-कश्मीर के नागरिक भी अन्य प्रदेशों की भांति भारत की परम्परा को बनाये रखने में समर्थ हैं। हमें अपने देश की सुरक्षा के लिये सदा तैय्यार रहना है। हम सबका उतरदायित्व अधिक है। सीमा पर सुरक्षा हेतु जवानों को अपना संम्पूर्ण सहयोग प्रदान करें।

"जय जवान......जय किसान"

"हम सब एक हैं"......

——"जयहिन्द"——

———

स्वीकृति

—सुदर्शन पानोपती

चन्दू को मरे एक वर्ष से ऊपर हो गया था। मैं उसके शरीरांत के पश्चात भी उस घर में कई बार जा चुका था। वहां की कोई भी वस्तु मेरे लिये अपरिचित नहीं थी, किन्तु न जाने क्यों, उस दिन मुझे प्रयास करने पर भी नींद नहीं आ रही थी। रात गये तक मैं करवटें बदलता रहा, कभी दाएं कभी बाएं। अनायास मुझे विचार आया कि यदि मैं सो गया तो सम्भव है प्रातः से पहले फिर मेरी आंख न खुले, और मेरे मन की मन ही में रह जाए। तृप्ता से यदि बात करनी है तो नींद की प्रतीक्षा छोड़नी होगी। यह बात मैं ने योंही सोच ली, अन्यथा रात को मेरे कमरे में आने के लिए उसने मुझे कह नहीं रक्खा था। मैं उठकर बैठ गया। कमरे में रोशनी नहीं थी किन्तु पूनम की चान्दनी की कोई कोई अलबेली किरण किवाड़ की जाली से छनती हुई अंधेरे से आ मिली थी। तृप्ता के खांसने की आवाज़ आई। सम्भवतः वह जाग रही थी। मैंने सिग्रेट सुलगाया और धुएं के नन्हे बादल मेरी कनपटी को स्पर्श करते हुए पीछे की ओर उड़ने लगे, मानों मेरी कल्पना को आह्वान कर रहे हों, विगत में झांकने के लिए।

नूरपुर गांव में आठवीं श्रेणी तक की पाठशाला थी। गांव भर के बच्चे वहीं पढ़ते थे, लड़के भी लड़कियां भी। चन्दू, तृप्ता और मैं पांचवीं श्रेणी के विद्यार्थी थे। जेठ की एक तपती दोपहरी में मैं चन्दू के मुंह की ओर देख रहा था वह कभी ऊंघने लगता, कभी सिर खुजलाता और कभी ब्लैक बोर्ड पर लिखते हुए शास्त्री जी की ओर देखकर मुंह बसोरता। उस का पढ़ाई में मन नहीं लग रहा था। मेरी भी यही दशा थी। अकस्मात वह उठा और शास्त्री जी की दृष्टि

से वचता हुआ कमरे से बाहर निकल गया। मैंने भी उसका अनुसरण किया और फिर तृप्ता ने भी। तीनों पाठशाला से परे अमराई में पहुँच गये, आम खाने के लिये। तृप्ता कई दिनों से कह रही थी :—

"रामू आम खाने नहीं चलना ?"

"तुम्हें तो और कोई काम ही नहीं है।" मैंने उसे झिड़क दिया था। वह रूठ गई थी।

"अच्छा ! कल चलेंगे।" चन्दू ने उसे प्यार भरे स्वर में कहा था।

मैं और चन्दू आम के वृक्ष पर चढ़ गये। तृप्ता को आदेश मिला कि वह बूढ़े माली का ख्याल रक्खे, जो अपनी फूंस की झोंपड़ी में मस्त सो रहा था। चन्दू ने दो तीन आम तोड़ कर नीचे फेंके थे।

"एक भी काम का नहीं चन्दू।" तृप्ता ने भवें सिकोड़ते हुए कहा था। चन्दू चिड़ गया था। वह उसे घूरने लगा था। एक आम मैंने फेंका।

"यह बहुत अच्छा है।" वह उठा कर खाने लगी थी। "तो तुम मेरा आम नहीं खाओगी ?" वह चिल्लाया। "नहीं नहीं मैं दोनों का खाऊंगी, मैं दोनों की हूं न।" उसने मुस्करा कर कहा था।

"चुड़ैल ! तू फिर आगई इन भूतों को साथ लेकर ?" बूढ़े माली ने उस की चुटिया पकड़ते हुए कहा था। उसके जागकर वहां पहुंचने की उसे कोई खबर नहीं थी। "देखो बाबा ! चुटिया पकड़ने की ज़रूरत नहीं, मैं पैसे ले कर आई हूँ, तुम सो रहे थे इसलिये तुम्हें जगाया नहीं, यह लो वैसे।" उसने दुपट्टे के छोर में बंधा हुआ रुपया खोलकर उस की ओर बढ़ाते हुए कहा था। माली हंसने लगा था "अरी पटवारी जी की बिटिया, मैं तुम से पैसे नहीं मांग रहा, मुझे यह डर है कि कहीं तुममें से किसी को चोट न लग जाए।" उसने कहा था।

रामकृष्ण पटवारी की बिटिया तृप्ता जब आम खा कर घर लौटी तो उसकी खूब पिटाई हुई थी और फिर उसे उसके मामा के यहां दिल्ली भेज दिया गया था। चन्दू को पता चला था तो उसने दो दिन तक खाना नहीं खाया था। दुख मुझे भी हुआ था किन्तु उतना नहीं।

"चन्दू ! आओ आम तोड़ने चलें।" मैंने आग्रह किया था। "नहीं रामू ! तृप्ता के बगैर अमराई में जाने को मन नहीं करता।" वह रोनी सूरत बनाए हुए बोला था।

तुम्हें उसके जाने का बहुत दुख है ?"

"तुम्हें नहीं क्या ?" वह तो दोनों की थी, मेरा ग्राम भी खाती थी तुम्हारा भी।" मैं सुन कर निःशब्द रहा था।

शैशव बीत गया। शिक्षा से निवृत होकर मैं तहसीलदार बना और चन्दू अध्यापक। जीवन के प्रति पूरा उत्साह और आस्था लेकर मैं गांव लौटा। पता चला कि चन्दू भी आने वाला है और तृप्ता तो यहीं है। वह उसी पाठशाला में अध्यापिका है, जहां हम ने अपना शैशव बिताया था।

'देखूं तो सही तृप्ता अब कैसी है।' मुझे सहसा विचार आया और मैं पाठशाला के रास्ते में, अमराई के मुख्य द्वार पर पहुँच कर उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

'मैं दोनों का खाऊंगी, मैं दोनों की हूं न ?' अनायास मेरी आंखों के सामने आम खाती हुई तृप्ता की मुखाकृति घूम गई। मैं मन ही मन मुस्करा दिया। परन्तु दूसरे ही क्षण मेरी मनोदशा विचित्र थी।

तृप्ता दोनों की कैसे हो सकती है ? वह केवल मेरी है। उसे भी मेरी जीवन संगिनी बनना स्वीकार होगा, आखिर तहसीलदार हूँ चन्दू तो साधारण अध्यापक है। नहीं. मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये, चन्दू मेरा बचपन का साथी है। हम साथ साथ पढ़ते रहे हैं, साथ साथ खेलते रहे हैं और साथ साथ खाते रहे है।

वह मेरी तरह आफिसर नहीं बना तो क्या हुआ ? आखिर है तो मित्र। मित्रता का तो अपना ही स्तर होता है। तृप्ता आगई और विचार प्रवाह रुक गया।

"रामू भैय्या किस की राह देख रहे हो।" उसने निकट आते ही कहा। मैंने महसूस किया कि वह वैसी ही चंचल और नटखट है जैसी अपने शैशव में थी। मैं मुस्करा दिया किन्तु बोला कुछ नहीं। मेरी आंखें उसके शैशव और तरुणाई के अन्तर का मूल्यांकन कर रही थीं। उसके व्यंग्य का उत्तर देते हुए मैंने उसे कहा—

"तृप्ता, तुमने कभी किसी ईरानी प्रतिमाकार की बनाई हुई प्रतिमा देखी है ?" मेरा विचार था कि वह चुप रहेगी और में उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता हुआ कहूंगा कि वह वैसी ही सुन्दर है, किन्तु वह तुरंत बोली—

"रोज़ देखती हूँ" मुझे आश्चर्य हुआ।

"कहां" मैंने उत्सुक होकर पूछा।

"दर्पण में, बाल संवारते समय" और वह खिलखिला उठी बचपन में बूढ़े माली को निरुत्तर करने वाली तृप्ता ने मुझे भी खामोश कर दिया।

"इतनी बातें कहां सीखी हैं ?" मैंने उसे फिर छेड़ा।

"इसी अमराई में, चन्दू और रामू के साथ खेलते हुए, और कहां सीखती" वह फिर खिलखिलाई मैं झुकी निगाहों से उसे देखता रहा।

"इस तरह क्यों देख रहे हो ?"

"किस तरह ?"

"जिस तरह कोई निराश प्रेमी अपनी प्रेमिका की जाती हुई डोली को देख रहा हो।"

"शायद वह अवसर भी आ जाए।"

'वह तो आयेगा ही।"

"क्यों ?"

"इस लिये कि तुम पुरुष होकर भी निर्बल हो, और मैं नारी हूँ, मगर सबला।" उसके उत्तेजित स्वर ने मुझे चौंका दिया। उसकी वाणी में रोष भी था और व्यंग्य भी। मुझे मन ही मन यह आभास होने लगा कि उसके अधरों पर थिरकने वाली मुस्कान के पीछे दुःख का एक गहरा सागर उफन रहा है। मुझ में अब साहस नहीं था कि मैं और कोई प्रश्न करू किन्तु फिर भी अनायास मेरे होंठों पर यह वाक्य आ ही गया।

"तृप्ता, मैं तुम्हारी यह पहेली नहीं समझ सका।"

"मुझे खेद है, पर मैं क्या कर सकती हूं। कल चन्दू आने वाला है उससे पूछ लेना, नहीं तो समय स्वयं समझा देगा" अब वह गम्भीर थी, पूरी तरह, मगर उसकी बातें मुझे पहले से अधिक तीखी लग रही थीं। मैंने प्रसंग बदलना चाहा और बोला—

"चन्दू कल आरहा है ?"

"हां, उससे भी तो पूछना है—मैं दोनों की थी न ?" यह कहते कहते उसकी आंखें सजल हो उठी, और वह आंचल के छोर से उन्हें पोंछती हुई गांव

की ओर चली गई। मन ने कहा, उसे आवाज़ दो रुक जाए और उसे पूछो कि मनोवेगों में यह ज्वार भाटा क्यों आया है? झील जैसी सुघड़ाकार आंखों में आंसुओं के शव क्यों तैरे हैं। परन्तु मस्तिष्क ने आज्ञा न दी और मैं खामोश रहा, ऐसे निराश प्रेमी की भान्ति जो अपनी प्रेमिका की डोली को क्षितिज के अवरोह में लीन होते हुए देख रहा हो।

सिग्रेट समाप्त हुआ तो पता चला कि मैं जाग रहा हूँ। उसके अन्तिम छोर ने उंगलियों के भीतरी भाग को इस तरह जला दिया कि मेरा रोम रोम सिहर उठा। फिर वही सिग्रेट, वही अलबेली चन्द्र किरण की अंधेरे से आंख मिचौनी, वही कनपटी को छूते हुए धुएं के छल्लों का विगत में झांकने के लिए आह्वान।

अमराई से लौट कर घर के मुख्य द्वार पर पहुँचा तो पिता जी की रोष पूर्ण ध्वनि कानों में पड़ी। मैं वहीं रूक गया। उनका एक एक शब्द मेरे मनप्राण में आग लगा रहा था।

"पटवारी जी आप फिर आ गये? मैंने तो पहले ही कह दिया था कि रामू का विवाह तृप्ता से नहीं हो सकता। रामू आज तहसीलदार है, कल माल अफसर बनेगा, दिन दुगनी रात चौगुनी तरक्की करेगा। एक अध्यापिका को उसके पल्ले बांध कर मैं अपने वंश की हेठी नहीं करना चाहता। तृप्ता तो पागल है मगर आप भी नहीं सोचते? आखिर हमारा और आप का मेल क्या है? मैं पांच हज़ार बीघे धरती का मालिक और आप एक साधारण पटवारी। एक राजा भोज दूसरा गंगू तेली, किन्तु आप को लज्जा ही नहीं आती। छोकरी के उकसाने पर आप फिर आगये हैं। तृप्ता नहीं मानती तो तुम जानो, मैं क्या करूं? हां इतना अवश्य कहूँगा कि चन्दू से बात कर देखो। उसका कोई आगा है न पीछा। एक बूढ़ी बूआ है सो वह भी मरने के करीब, वह मान जायेगा।"

रामकृष्ण पटवारी सिर झुकाए हुए चला गया। घर के बाहर मुझे खड़ा देख कर उसने एक नज़र मुझ पर डाली और फिर अपनी राह हो लिया। तृप्ता और मेरे विवाह के लिये उसे जो तिरस्कार मिला, उसका समस्त दायित्व मुझ पर है, बार बार यह विचार मेरे मस्तिष्क को झंझोड़ने लगा। मेरी आंख झुक गई और मैं आत्म ग्लानि का अनुभव करता हुआ नत मस्तक भीतर गया। अगले दिन मां के लाख रोकने पर भी मैं वहां नहीं रुका और वापिस नौकरी पर लौट गया। मैंने चन्दू से मिलने का विचार भी त्याग दिया।

बाद में मुझे पता कि चन्दू आया और पटवारी जी की बात उसने मान ली। तृप्ता सदा सदा के लिये उसकी होगई। कुछ दिन पश्चात बुआ मर गई तो वह उसे अपने साथ बरेली ले गया। वह उन दिनों वहीं लगा हुआ था। तृप्ता ने भी वहीं नौकरी कर ली। समय सरपट दौड़ता रहा, मेरा मुंह चिड़ाता हुआ, मेरी उमंगों की लाशों को पावों तले रौंदता हुआ। फिर एक दिन अनायास मेरी नियुक्ति भी बरेली हो गई। मैंने वहां जा कर चन्दू और तृप्ता को मिलने का प्रयास नहीं किया। मैं चाहता था कि मैं उन्हें भूल जाऊं। परन्तु चन्दू को किसी न किसी तरह यह पता चल ही गया कि मैं वहां आ गया हूं। वह मुझे मिलने स्वयं आ गया। काफी देर बैठा रहा, इधर उधर की बातें होते रहीं, मेरी मां की, पिता जी की, नूरपुर गांव की और विशेष कर अमराई और बूढ़े माली की। वह बोलता रहा और मैं हां, हूं कह कर उसे सहयोग देता रहा। जाती बार वह मुझे आगामी रविवार के दोपहर के भोजन के लिए आमन्त्रित भी कर गया। मैंने चाहा कि न कर दूं किन्तु तृप्ता के दर्शनों की पिपासा ने मुझे हां कहने पर विवश कर दिया।

रविवार को उनके यहां गया तो उन दोनों ने मेरा हार्दिक स्वागत किया। तृप्ता मुस्करा रही थी। उसका यौवन अपने साथ असीम रूप भी लाएगा, यह मैंने कभी सोचा तक नहीं था, ईरानी प्रतिमाकार की प्रतिमा को, मानों, सुन्दर आभूषणों तथा वस्त्रों से सजा दिया गया हो। वह हंसती तो उसके गालों पर ललाई फैलने लगती, जैसे शिशिर में प्रातः काल की मनभावन धूप फैलती है। बात करते करते रुक जाती थी तो लगता जैसे बजता हुआ तानपूरा एक दम खामोश हो गया हो।

"मैं तो आप को प्रायः याद करती हूं भैय्या, किन्तु आप....... ।"

"करोगी क्यों नहीं, आखिर तुम दोनों की थी न ?" चन्दू ने उसकी बात काट दी।

"नहीं चन्दू मित्र की पत्नी तो बहन के समान होती है। यह तब भी तुम्हारी थी और अब तो खैर है ही।" मैंने तुरंत कहा और वह कहकहा लगा कर हंस दिया।

"अच्छा भैय्या यह बताइये कि आप हमारे विवाह पर क्यों नहीं आए थे, निमन्त्रण तो मिला होगा ?"

"मिला था मगर........" और इससे आगे मैं कुछ न कह सका। वह

मुस्कराती हुई मेरी ओर देखने लगी, मानों कह रही हो आते भी कैसे, आखिर निर्बल जो ठहरे, निर्बल पुरुष सबला नारी को पराई होते हुए कैसे देख सकता है ? मेरी खामोशी में सन्निहित मेरी कमज़ोरी को वह शायद भांप गई थी। वह उठी और भोजन की व्यवस्था के लिये रसोई में चली गई।

वहां से लौटा तो मन पर एक व्यर्थ का बोझ था। चन्दू की सफल गृहस्थी पर मैं कभी कुढ़ता और कभी मुझे स्पर्धा का आभास होता। एक सप्ताह लगातार मैं इसी विषय पर सोचता रहा और आखिर यह सोच कर सन्तुष्ट हो गया कि जो होना था, सो हो लिया, अब तृप्ता मेरी तो नहीं हो सकती। अब तो मुझे ईश्वर से यही प्रार्थना करनी चाहिये कि वह जीवन पर्यंत सुखी रहे। परन्तु मेरी प्रार्थना ईश्वर ने स्वीकार नहीं की। चन्दू अकस्मात बीमार हो गया। मैं उसे देखने गया तो उसने अपने स्वभावानुसार मुस्कराते हुए कहा।

"राम, यदि मैं न रहूं तो तृप्ता का ख्याल रखना, यह दोनों की थी न ?"

"अरे ऐसा न कहो तुम शीघ्र अच्छे हो जाओगे।" मगर हुआ वही जो चन्दू ने कहा था। वह न रहा तृप्ता ने अपने सुहाग की चूड़ियां उसकी चिता की धधकती हुई आग में फैंक दीं, माथे की बिंदिया उतार दी, मांग का सिन्दूर पोंछ दिया। वह चीखी नहीं, चिल्लाई नहीं। चिता से चन्द कदम की दूरी पर, अपनी मां के कन्धे पर सिर रखे वह चकित दृष्टि से अपने भाग्य को लुटते देखती रही। मैं उसकी मूकता को सबलता का प्रतोक समझ रहा था किन्तु वास्तविकता यह नहीं थी। अंतस में उबलने को बेकरार दुःख के झरनों ने मूर्त रूप धारण किया, जब चन्दू की देह राह राख के ढेर में परिणत हो गई और हम घर वापिस आ गये। वह उस समय रोई और फिर सारी रात रोती रही, अपने बाल नोचती रही, सिर को दीवारों से टकराती रही। यह तूफान थमा, तो उस समय, जब उसकी मां ने सांत्वना देते हुए उसे क[illegible] कि वह अपना नहीं तो आने वाले जीव का ध्यान तो रक्खे। उसके रोने का प्रभाव उस पर भो पड़ता है। परन्तु वास्तव में उसकी पलकें उस दिन सूखी, जिस दिन नन्हा नीरज चन्दू की निशानी बन कर उसकी गोदी में किलकारियां मारने लगा।

अब वह फिर प्रसन्न थी। समय ने उसके घावों को शुष्क कर दिया। नीरज के प्यार ने उसकी आहें को मादक लोरियों में बदल दिया। वह पढ़ाने जाती तो नीरज को अपनो मां के पास छोड़ जाती और लौटती तो बस उसे उठाए उठाए फिरती, मानों चन्दू का चित्र उठाए फिर रही हो। मैं अब भी वहां जाता

और वह मेरा वैसा ही स्वागत करती जैसा उसने पहले दिन किया था। उस के शरीर पर अब सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण तो न होते किन्तु उसके अधरों पर मुस्कान वैसे ही थिरकती जैसे मैंने प्रारम्भ में देखी थी, नूरपुर गांव में अमराई के मुख्य द्वार पर।

गत रविवार को जब मैं उस मिलने गया तो बातों बातों में उसने मुझ से पूछा कि मेरे अब तक अविवाहित रहने का कारण क्या है ? मैं खामोश रहा तो बोली—

"मैं एक वर्ष में जीवन को कितनी ही सीढ़ियां चढ़ गई हुं। प्रेमिका बनी दुल्हन बनी, गृहस्थिनी बनी और अब एक विधवा मां बनी बैठी हूं, किन्तु आप हैं कि अब तक वहीं खड़े हैं, जहां से मैं चली थी।" वह मुस्कराई किन्तु पहले की भान्ति नहीं। कुछ ऐसी मुस्कराहट थी वह जिसमें मुझे दूल्हा के रूप में देखने का उसका चाव तो था ही उसके अपने उजड़े हुए जीवन की शून्यता भी थी। मैंने उसे इधर उधर की बातों उलझा कर उसका ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट कर दिया और बात आई गई हो गई।

उस दिन मैं वहां से लौ । तो मेरे मन में एक अजीब सी हलचल मची हुई थी। मुझे तृप्ता पर गुस्सा आ रहा था कि मेरे अविवाहित रहने का कारण जानते हुए भी उसने मेरे घावों को कुरेदने का प्रयास क्यों किया ? न मैं उसे प्यार करता और न मेरी यह दशा होती। परन्तु साथ ही मैं यह भी सोचने लगता कि उसका इस में दोष ही क्या है ? उसने तो मेरी होने के लिए कोई प्रयास शेष नहीं छोड़ा। उसके पिता का अनादर हुआ तो केवल इस लिये कि वह उसके कहने पर बार बार मेरे पिता के पास गये ताकि मह जीवन साथी बन सकें। आखिर मैंने यह निर्णय किया कि अब भी क्या बिगड़ा है ? तृप्ता यदि मान जाए तो मैं अब उसे अपनी बना सकता हूँ। वाह यह भी कोई बात हुई ? वह चन्दू की विधवा है वह मेरा परम मित्र था, और फिर मैंने स्वयं ही तो कहा था कि दोस्त की पत्नी बहन के समान होती है। यह पापयुक्त मनोवृत्ति है, ऐसा मुझे बिल्कुल नहीं सोचना चाहिये, और फिर वही कल्पना में उथल पुथल।

क्यों नहीं सोचना चाहिये ? ऐसा सोचना आखिर पाप किस तरह है ? क्या पाप और क्या पुण्य ? पाप की तो ठोस परिभाषा ही नहीं। मद्यप को मदिरालय में शान्ति मिलती है इसलिए उसका वहां जाना ही उसके लिये पुण्य है, लोग भले ही इसे पाप कहते रहें और यदि यह पाप है भी तो, इसका भागी बनता

हुआ भी मैं एक बार तो अपने मन की बात तृप्ता से कहूँगा ही। अपने मस्तिष्क की समस्त उधेड़ बुन की अवहेलना करते हुए मैंने मन ही मन यह निश्चय कर कर लिया कि अगली बार जब मैं उसे मिलने जाऊंगा तो उसकी मां को नज़रों से बचकर उसके सामने यह प्रस्ताव रखूंगा कि वह मुझे अपनी मांग में सिन्दूर भरने की आज्ञा दे दे और सदा सदा के लिये मेरी हो जाए। ईरानी प्रतिमाकार की बनाई हुई प्रतिमा की लुटी हुई आभा, मैं फिर लौटा लाऊंगा, मैंने सोचा।

उसी दिन से मैं रविवार की प्रतीक्षा करने लगा। इस बीच मैंने सोने के दो सुन्दर कड़े बनवा लिये और सोचा कि पहले उसे उपहार दूंगा और यदि उसने यह स्वीकार कर लिया तो फिर उसे अपने मन की बात भी कहूंगा। रविवार को मैं दोपहर से पूर्व ही वहां पहुँच गया। उसकी मां ने आग्रह किया कि उस रात को मैं वहीं रुक जाऊं। उसका यह अनुरोध मुझे अपने लिए एक वरदान दिखाई दिया। शायद रात के अन्धेरे ही मेरी किस्मत को बदल दें, मैंने सोचा और बोला—

"मां रात का क्या है? कहीं तो बितानी ही है। तुम आज्ञा देती हो तो यहीं बिता लूंगा" वैसे यह केवल अवसर की बात थी, मैं यह सोचकर नहीं गया था कि रात भी वहां रुकूंगा।

अलबेली चन्द्र किरण का अन्धेरे से मिलन सिग्रेट के धुआं धार छल्लों का कनपटी को स्पर्श करते हुए विगत में झांकने का आह्वान। अकस्मात सिग्रेट के अन्तिम छोर ने उंगलियों का भीतरी भाग फिर जला दिया।

"उफ्"

"अरे, आप अभी तक सोए नहीं?" अकस्मात तृप्ता का स्वर मेरे कानों में पड़ा। वह आंगन में खड़ी थी। शायद किसी काम वश उठी थी।

"नींद ही नहीं आती।"

"नई जगह आने पर ऐसा हो ही जाता है।"

"तुम्हारा घर भी मेरे लिये नई जगह है, तृप्ता?"

"अरे हां, यह तो मैं भूल ही गई।" और वह हंसती हुई मेरे कमरे में आ गई। उसने बटन दबाकर रोशनी की और फिर बैठते हुए बोली—

"चलो कुछ देर मैं भी आप का साथ देती हूं, मैं जागने की कोशिश करती हूँ, आप सोने की कीजिये।" वह फिर मुस्कराई। उसके इस प्रकार चले आने को

मैंने शुभावसर समझा। अपने तकिये के नीचे से कड़े निकाल कर मैंने उसकी ओर बढ़ाए और बोला—

"तृप्ता यह कड़े मैंने तुम्हारे लिये बनवाए हैं, देखो तो, शायद तुन्हें यह तुच्छ उपहार पसन्द आ जाए।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ? उपहार कभी तुच्छ नहीं होते।"

"तो मैं समझूं कि तुम्हें यह स्वीकार है ?" मेरा स्वर बहुत उत्तेजित था। मैं चाहता था कि वह तुरंत हां कह दे और मैं उसे कहूं कि तृप्ता अब मैं तुम्हारे बगैर नहीं रह सकता, मुझे अपने चरणों में स्थान दे दो। मगर वह मौन रही और एक क्षण पश्चात् बोली—

"एक बार ऐसे ही सुन्दर कड़ों का उपहार मुझे उन्हों ने दिया, मगर वह मेरी बाहों को रास न आए। वे चले गये, और में रह गई इन कड़ों को देखकर आंसू बहाने के लिये--उस बंधन के टूटने का शोक मनाने के लिये, जो पवित्र अग्नि को साक्षी मान कर हमने जोड़ा था। आज वैसा ही उपहार आप दे रहे हैं, मैं इसे भी अवश्य स्वीकार करूंगी, योंकि मैं तो दोनों की थी न—मगर स्वीकार करूंगी कल। शायद यह बंधन पहले बंधन से सुदृढ़ निकले।"

यह कहते हुए उसकी मुखाकृति एक दम गम्भीर हो गई। मेरे मन में कुतूहल तो था ही, अब वह और भी बढ़ गया। मैंने उत्सुक होकर पूछा ?

"कल ? कल क्यों ?"

"कल रक्षाबंधन है न, धागों के पावन त्योहार की शुभ घड़ियों में ही मैं इसे स्वीकार करूंगी, आप की कलाई पर राखी बांध कर, ताकि यह बंधन सार्थक ही नहीं शाश्वत भी हो जाए।"

वह धीरे धीरे बोलती जा रही थी और उसके अधरों पर स्मित रेखाएं नाच रही थीं। वह कड़े हाथ में पकड़े मेरी ओर देख रही थी। मुझे यों लगा मानों उसकी दृष्टि अंतस की गहराइयों तक पहुंच गई हो और उसकी मुस्कराहट मुझ पर एक व्यंग्य कसते हुए कह रही हो—

'दुर्बल पुरुष ! तुम्हारे मन में छिपे पाप को सबला नारी अच्छी प्रकार जानती है मगर तुम शायद नहीं जानते कि मैं दोनों की थी, किन्तु एक की पत्नी दूसरे की बहन।'

———

प्रेमिका और पत्नी

—दीदार सिंह

जब मैं प्रेमिका थी तो पत्नी नहीं थी, और अब जब से पत्नी बनी हूँ तो मुझ में शायद प्रेमिका का वह आकर्षण नहीं रहा जिसे देखकर मेरा भूतपूर्व प्रेमी, अर्थात् वर्तमान पति लट्टू हुआ था। बचपन की भांति वह भी कितना अच्छा समय था जब जवानी की अल्हड़ मस्ती थी और बस भविष्य के सपने ही सपने थे। 'सपने' जब तक सपने रहें तो अच्छे लगते हैं—नहीं तो सच होते ही वे कटु सत्य की भांति अखरने लगते हैं।

आज भी वही प्रेमिका बनने को जी चाहता है—जिसे मिलने के लिए 'यह' कभी इतने व्याकुल हुआ करते थे और मुझे रोज़ किसी न किसी बहाने मिलने का अनुरोध किया करते थे। तब 'इनके' लिए मुझ से बढ़कर और कोई हसीन न थी, कोई स्वीट न थी। यह उस समय की बात है जब हम एक दूसरे के सपने देखा करते थे, एक-दूसरे के लिए शुभ कामनाएं किया करते थे और अपनी छोटी से छोटी बात एक दूसरे से कहे बिना रह नहीं सकते थे। हम अपने अन्दर का सबकुछ आदान प्रदान कर एक दूसरे से अपना अन्दर भर लेना चाहते थे।

लेकिन अब वे मुझसे 'बोर' हो गये हैं (ऊब गये हैं)—मैं भी उनके रूखे व्यवहार से बोर हो गई हूँ। कभी-कभी हम एक ही कमरे में दो अजनबियों की भांति सोते हैं—जैसे एक दूसरे को जानते तक न हों—या जानना चाहते न हों।

वे सुबह देर से उठते हैं—क्योंकि रात देर से सोए होते हैं। मुझे सुबह उठना पड़ता है। क्योंकि मुझे उनसे पहले जाना होता है। जब वे उठते हैं तो मैं

दोपहर के लिए खाना और प्रातः का नाश्ता तैयार कर चुकी होती हूं तथा जाने की तयारी कर रही होती हूं। वे अगर ज़रा पहले उठ जाएं तो नाश्ता मेरे साथ ही करते हैं—नहीं तो ाद में अकेले ही करते हैं : मुझे स्कूल जाने की जल्दी होती है इस लिए उस समय उनसे कोई दिल की बात करने का समय नहीं होता। शाम को वह देर से आते हैं, और आते ही अखबार के पीछे पड़ जाते हैं। अखबार हाथ में आई नहीं कि बस उधर चाहे घी के घड़े उलट जाएं। अखबार को छोड़ेंगे तो कोई पुस्तक लेकर बैठ जाएंगे या फिर घर के लिए ज़रूरी सामान खरीदने 'निकल पड़ेंगे। खाना खाया और फिर पुस्तक पकड़ ली। उनके पुस्तक छोड़ने से पहले मैं सो चुकी होती हूं। जब मैं सो जाती हूँ तब वे लिखना शुरू करते हैं। मेरे जागते समय नहीं लिखते—क्योंकि उन्हें भय रहता है कि मैं बीच में बोल पड़ूंगी और उनका ध्यान चूक जायगा। उन्हें पढ़ते या लिखते समय किसी ने बुलाया नहीं कि किसी ने तो क्या मैंने ही बुलाया नहीं कि वह बिजली की तरह बरसे नहीं। यहां तक कि अखबार पढ़ते भी उनके काम में खलल डालना घोर अपराध है। वे पढ़ते रहते हैं और मैं पास चुप-चाप बैठी रहता हूँ। यों चुप बैठे बैटे जब मन ऊब जाता हैं तो मैं कोई बात कर बैठती हूं क्योंकि पति को घर में बिठाकर भला मैं कहां घूमने जा सकती हूं—लेकिन उनसे बात की नहीं कि जली-कटी सुनी नहीं। कई बार तो मैं जानबूझ कर उन्हें छेड़ बैठती हूँ कि देखूं उन्हें कितना गुस्सा आता है। क्योंकि मैं भी उनके गुस्से की आदी हो चुकी हूँ। मैं उनसे पूछती हूँ, "सुबह आप सोये रहते हैं, दिन को दफ्तर रहते हैं, शाम को आकर अखबार या पुस्तक पकड़ लेते हैं। तो बताइए मेरे लिए कौनसा समय है कि आप से बातें करूं ? मुझे भी तो कुछ समय मिलना चाहिए !"

वे कहते हैं, "तुम्हारे पास ही तो बठा हूं।"

वे पास होकर भी मुझ से बहुत दूर रहते हैं। काश कि मुझे भी पढ़ने लिखने का शौक होता तो मैं भी पुस्तकों से अपना मन बहला लेती। और फिर पढ़ने का अवकाश भी कहां मिलता है। सुबह शाम घर का काम काज नहीं समाप्त होता दिन को स्कूल में खड़े खड़े टांगें अकड़ जाती हैं। बिस्तर में पड़ी नहीं कि नींद आई नहीं। हां, सोकर मुझे बहुत आनन्द प्राप्त होता है। लेकिन जैसे मुझे उनके पढ़ने से चिढ़ है वैसे ही उन्हें मेरे सोने से चिढ़ है। वे चाहते हैं जब तक उनकी लिखाई पढ़ाई का काम समाप्त नहीं होता, मैं जागती रहूं। भला रात के दो-तीन बजे तक कौन जागे। वे तो न भी सोएं तो उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन मैं अनिद्रा नहीं काट सकती। कई बार जब वे रात को अपने काम से

निवृत्त होकर मुझे छेड़ते हैं तो मुझे बहुत गुस्सा आता है। उनकी पढ़ाई में दखल देने से उन्हें जितना गुस्सा आता है उतना ही गुस्सा मुझे मेरी निद्रा से जगाने पर आता है। फिर कई बार हमारी खूब लड़ाई हो जाती है। उस समय मैं उनकी मांग नहीं पूरी कर सकती और उनका विक्षोभ विस्फोट की सीमा तक जा पहुँचता है। गुस्से में आकर वे मुझपर दो-चार लातें भी जमा देते हैं। मैं रोने लगती हूँ तो उन्हें और गुस्सा आता है।

जब मैं प्रेमिका थी तो मेरे एक आंसू पर वे कई आंसू बहा दिया करते थे लेकिन अब मेरे अनेक आंसुओं पर भी उनका एक आंसू नहीं बहता। जिस रात या दिन को हमारी लड़ाई होती है, उसके कई दिन बाद तक वे मुझसे बात तक नहीं करते। मैं उन्हे मनाने के लाख यत्न करती हूं। उस ढंग से नहीं जैसे वे मानना चाहते हैं, बल्कि अपने ही ढंग से मनाती हूं और वे और भी मेरी अवहेलना करते हैं। मैं उनकी उपेक्षा के डंक सहती हूं क्योंकि मैं उनकी पत्नी हूँ। उन्हें सब कुछ कहने-करने का अधिकार है और मेरा सब कुछ सहने का कर्तव्य है।

कई बार जब मेरे धैर्य का बान्ध टूट जाता है तो मैं उनके हाथ से अखबार या पुस्तक छीन कर उनके पास बैठ जाती हूँ। वे कहते हैं, "तुम न कुछ पढ़ने देती हो न लिखने देती हो—तुमने मुझे बिल्कुल निकम्मा बना दिया है।"

लेकिन में हैरान होती हूँ कि उस समय ये मुझे मिलने के लिए कैसे समय निकाल लेते थे, जब मैं इनकी अभी पत्नी नहीं बनी थी। तब भी तो पढ़ते-लिखते थे। अब उन्होंने कौनसा महाभारत या रामायण लिखना शुरू किया है! तब तो मुझे मिलने के लिए दो-दो घण्टे प्रतीक्षा कर लेते थे, और मैं चाहती तो सारा दिन मेरे साथ रहने के लिए समय निकाल सकते थे। समय तो अब भी निकाल सकते हैं लेकिन मेरे लिए नहीं, अपनी मित्रों के लिए। अभी रंजना आ जाए तो पुस्तक अपने-आप रैक में चली जाएगी, अखबार हाथ से छूट जाएगा। अगर वह तीन घंटे तक बैठी रहे तो उसके साथ गप्पें हांकते रहेंगे। अभी मनजीत आ जाए तो फौरन बाज़ार दौड़े जाएंगे और गुलाब जामुन समोसे आदि ले आएंगे। लेकिन मैं अगर अपने लिए कभी मूंगरा लाने को कहूँ तो कहेंगे, "स्वयं ले आओ।" अभी डेज़ी आ जाए तो उसे घर तक छोड़ने भी चले जाएंगे और फिर वहीं चाहे रात के १०-११ बजा कर आएं। इनकी किसी भी मित्र के आने पर मेरी क्या मजाल कि मैं उसके लिए जल्दी से चाय या खाना न तैयार करूं! उनसे बातें करके ये बहुत खुश होते हैं।

वे इनकी मित्र जो ठहरीं, जो कभी-कभी आती हैं—और मैं ठहरी पत्नी। घर की मुर्गी दाल बराबर ही तो होती है। शादी से पहले वे मेरे साथ भी यों ही बातें करके खुश होते थे—मुझे अच्छी से अच्छी चीज भेंट करते थे और घर तक छोड़ कर आते थे। अब तो कभी दवा लाने को कहूँ तो कहते हैं, "कल स्कूल से आते समय ले आना।'

कितना सामीप्य है 'प्रेमिका' और 'मित्र' में—लेकिन कितना अन्तर है 'प्रेमिका' और 'पत्नी' में। बहुत कम ऐसी पत्नियां होती हैं जो अधिक देर तक प्रेमिका भी बनी रहती हैं। प्रेमिका उड़ते पंछी की भांति होने के नाते प्रेमी को प्रिय लगती हैं—लेकिन पत्नी तो पिंजरे में बन्द पक्षी की भांति है जो घर की चारदीवारी से बाहर पांव नहीं रख सकती। पत्नी को परंपराओं, रिवाजों और कर्तव्यों के पिंजरे में कैद कर दिया जाता है जहां वह तोते की भांति उसी पाठ को रटे जैसे उसका पति कहे।

जब पति-पत्नी की रुचियां परस्पर टकरा जाती हैं तो पत्नी पति द्वारा बताए गए पाठ को रटना छोड़ देती है। वह चारदीवारी से बाहर की ओर झांकने लगती है, और कोई पति भी किसी रंजना या किसी डेज़ी के पीछे भागता है। व्यक्ति को केवल शरीर की भूख ही नहीं होती, मन की भी भूख होती है। उसकी बौद्धिक भूख के कई पहलू होते हैं, और इन विभिन्न पहलुओं की भूख मिटाने के लिए उसे विभिन्न स्रोत ढूंढने पड़ते हैं। बौद्धिक अथवा भावात्मक प्यास कभी एक घाट से नहीं बुझती।

जब मैं प्रेमिका थी तो मेरा पत्नी बनने का स्वप्न था। जब से यह स्वप्न पूरा हुआ है तब से फिर प्रेमिका बनने का स्वप्न लेने लगी हूं ताकि वे मुझे फिर पहले की भांति प्यार कर सकें। कोई मेरा अतीत लौटा दे ताकि जीवन में सरसता आए और मैं फिर से नये सपने लेने लगूं मैं फिर से किसी के दिल व दिमाग पर छा जाना चाहती हूँ जो मेरी बाट जोहता हो।

कवितान्तर प्रक्रिया—अकविता

– श्याम परमार

आधुनिक कविता की कठिनाइयां भी अभिव्यक्ति संबंधी संकट से बद्ध हैं। उसमें समुचित प्रक्रिया का संक्रमण तब आरंभ होता है, जब शब्दों की प्रयोजनीय अर्थवत्ता से वह ऊब जाती है। प्रयुक्त शब्दों का सहारा उसे अपर्याप्त लगता है, और वह उसकी अनुवर्तिनी बनने से इन्कार करती है। इस स्थिति में अपने वास्तविक कथ्य को पूर्ण संप्रेषित करने के लिए अन्य विधाओं के सामर्थ्य की ओर उन्मुख होना उसके लिए स्वाभाविक है।

सातवें दशक के करीब आते-आते हिन्दी कविता भीतरी जटिलताओं को व्यक्त करने की प्रक्रिया में तथाकथित नयी कविता में बार-बार आवर्तित होती हुई प्रवृत्तियों से अलग जाने लगी थी। उसे एक भिन्न Texturec बुनावट, में उपलब्ध करने का प्रयास कुछ निस्संग और तटस्थ मन:स्थिति के कवियों ने किया। क्योंकि सवाल अभिरुचियों के बीच फासले का तो था ही, कविता के मृतप्राय: संस्कारों से मुक्त होने का भी था। पार्थक्य का यह स्पष्ट संकेत था, पार्थक्य उस कविता से जो छायावाद के लम्बे उत्तरार्थ की उपयुक्त परिणति सिद्ध हुई। इस दृष्टि से मुझे यह बराबर महसूस होता रहा कि छायावाद की वास्तविक मृत्यु बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व नहीं बल्कि छठे दशक के अंत में आकर हुई; अर्थात् छायावाद से ही जन्मे कथ्य एवं रूपगत परिवर्तन कई वर्षों तक नये मूल्यों के निमित्त, प्रयोगवाद और बाद में नयी कविता के नाम से एकरस बने रहे। केवल इतना हुआ कि उस परिवर्तन ने छायावाद की अबोध भावुकता का आभा-मंडल विच्छिन्न करके, सम्पन्न स्थिति

की सूक्ष्म संवेदना को दूसरे स्तर पर ग्रहण किया। 'मन्द्र सप्तक' से 'तार सप्तक' में आते हुए केवल 'सुर' बदला। लेकिन मूल-संक्रमित स्थिति में मृत्यु के पश्चात् भी प्रेतबाधाएं आती हैं, और कुछ स्वर असंतुष्ट प्रेत के बराबर प्रतिध्वनित होते हैं। शायद कुछ काल तक आगे भी होते रहें। क्योंकि वह प्रेत उस अघायी हुई पीढ़ी का है जिसके ड्राइग रूम में एक जर्जर पयानों रखा है। प्रेत समय-असमय आकर उसके सप्तकों पर उंगलियां तोड़ने का लोभ संवरण नहीं करता। तथाकथित नयीकविता इस माने में बूर्जुवा मनोवृत्ति के बुद्धिजीवियों की कविता भर रह गयी है। वह ऐसी पीढ़ी की कविता है जिसका स्वर अति तारसप्तक में जाकर फट गया है, और वह उस स्वर को ही साध्य माने बैठा है। यह भ्रांति उसे इसलिए हो गयी कि उसकी नियति भौतिक उपलब्धियों में मोहग्रस्त होकर प्रतिष्ठाकामी बन गयी है। एक और स्तर उसके नीचे है व्यवसायिक पत्रकारिता और अध्यापन का—जिसमें भी उसकी प्रखरता का स्खलन हुआ है। इस प्रकार की निर्वीर्य स्थिति में अतीत की उपलब्धियों पर जीने के साथ एक धुन्धलका अपने आप आ जाता है। संवेदनाओं के वृत्त यहां आकर अपने मुहावरे स्थिर कर लेते हैं और कथ्य एवं भाषा का एक दायरा बन जाता है।

लेकिन प्रश्न अब उस कविता का नहीं, जिससे 'अज्ञेय' को शिकायत रही। प्रश्न उससे भिन्न स्थिति की कविता का है: उस टूटन का है जो कविता से निकलकर अकविता की ओर बढ़ रही है। सम्भावनाओं के वैविध्य को देखते हुए सवाल इस बात का है कि परम्परा के संदर्भ को सातवें दशक की निस्संग और अतर्क्य कविता किस रूप में ले, क्योंकि अकविता का तेवर अब विक्षुब्ध किन्तु संतुलित मनःस्थिति का तेवर सिद्ध हो चुका है। अकविता के समक्ष विरोध मूल्यहीन है। लेकिन नैरन्तर्य से कटकर क्या किसी सिक्के के एक पक्ष की भांति यकायक प्रकट होना सम्भव है? प्रकटीकरण भी ऐसा कि सिक्के का दूसरा पक्ष पूरी तरह ओझल हो जाये। तब की परंपरा पीठ से सटे हुए इतिहास का बोझ होगी। उसे अस्तित्व से पृथक तो किया जा सकता। फिर भी क्या अतीत-रहित होने का एहसास नंगेपन का नहीं लगता? अमरीकी बीट ने इस अनुभूति में स्वयं को अकेला अरक्षित, असंतुष्ट और अत्यन्त विडम्बनात्मक विकृतियों से ग्रस्त पाया। विरोधाभास और विसंगतियों से उद्भूत जड़ता ने उसे कुंठित कर दिया। उसने समकालीन बुद्धिजीवियों को सत्तागामी नेतृत्व में खंडित होते देख लिया था। सामाजिक तिरस्कार और व्यतिक्रम के मध्य उसे अपने अस्तित्व के लिए वैचित्र्य ही साध्य एवं साधन लगा।

उस वैचित्र्य का भी एक Patternistic Romanticism (कलात्मक भावुकता) में जाकर अंत हुआ। गिलबर्ड सोरेण्टीनों से उसके बीट मित्रों के बारे में बी. बी. सी. के एक भेंट वार्ताकार ने जब प्रश्न किया तो उसकाउत्तर था: सभी बीट्स रोमैण्टिक हैं। रोमैण्टिक उदण्ड अर्थ में, क्योंकि वे अहं में पगला गये हैं। उनका ख्याल है कि वे अपने सम्बन्ध में जो कुछ भी व्यक्त करेंगे लोग उसमें रूचि लेंगे। इस उद्धरण को शायद यहां उद्धृत नहीं किया जाता यदि प्रारंभ के प्रकाशन पर डा. माचवे ने अज्ञेय की रुचि और आज की रुचि में फर्क आ जाने की वास्तविकता का समर्थन न किया होता, या नेमिचन्द्र जैन ने तारसप्तक का पुनर्मूल्यांकन करते समय अज्ञेय को प्रकाशक मात्र और गिरिजा कुमार माथुर ने मात्र संगठ-कर्ता से अधिक हैसियत देना उपयुक्त न समझा होता।

परम्परा की बात पर फिर लौटता हूं। नयी कविता ने उसके प्रति विरोधी आस्था से काम लिया। किन्तु बोझिल अतीत की भूमिका के बावजूद भी भारती बुद्धिजीवी के लिए परम्परा उपादेय सिद्ध नहीं हुई। स्थितियों ने उसके आगे प्रतिष्ठा और पदों के अनेक मार्ग उद्घटित किये। परम्परा पीढ़ी से सटी रही। परिणाम यह हुआ कि वह अवाक् और चमत्कृत होकर, अपनी ही पराजय के मोह में, गौरवान्वित अनुभव करने लगा। विरोध गल गये और विनय मन: स्थिति में नयीकविता का पौरुष स्त्रैण रोमैण्टिकता (भावुकता) का पक्षधर होकर, अपरोक्ष में छायावादी आरम्भ के अध्यात्म की वकालत करने लगा।

अकविता को परम्परा के भीतर होने का बोध है, लेकिन उसे काटते चले जाना होगा, क्योंकि वह व्यर्थ है। काटते चले जाने की कोशिश नकारात्मक गति है इस दृष्टि से अकविता न अव्यवस्थित एवं असंयोजित कथन है, न अनर्गल और अर्थहीन रचनाओं का संचयन। इस दशक की विरूपित विसंगतियों को शब्देतर संकेतों द्वारा अतिमा की ओर ले जानेवाली रचनाएं जब दुर्बोध घोषित की जाती हैं तो प्राय: आम पाठक के स्तर का आश्रय लिया जाता है। दायित्व लेखक के सर मढ़ा जाता है, जिसकी ईमानदारी वस्तुत: निस्संग होने में है।

दृष्टि का सूक्ष्मतर होना अथवा विषय से विषयहीन हो जाना भी एक मानसिक प्रक्रिया है, जो बाह्य-वास्तविकता से आभ्यंतर वास्तविकता की ओर ले जाती है: टब में संचित जल में डूबी हुई टांगों का अंश टेढ़ा और बौना दिखायी देता है। सच यह है कि वह टेढ़ा नहीं होता, मगर टेढ़ा दिखायी देता है। उसका

टेढ़ापन बाह्य वास्तविकता है, तर्क से उपलब्ध प्रामाणिक सत्य। अकविता की यह भी एक सम्भावित गति है। आरोपित सत्य के इस विभ्रम को भंग करते समय, स्वाभाविक है कि दुर्बोधता आज के पाठक के पक्ष में होगी, कवि के पक्ष में नहीं। इसे चाहे दायित्वहीनता, निरनुशासन, स्वछन्दता कुछ भी कहा जाये, किन्तु विचारणीय यह है कि जिसे कविता का दायित्व कहा जाता है वह प्रकट सत्य तथा वास्तविक सत्य के स्तरों पर कहां अवस्थित है और कविता परम्पराओं की रूढ़ अपेक्षाओं से कहां आकर अलग होती है, अथवा अनुशासन की सीमाएं किन संधि-रेखाओं पर आकर विकेन्द्रित होती हैं जिनके विघटित होने पर कविता कविता होने से वंचित हो जाती है।

ऐसा क्यों होता है कि कैलाश वाजपेयी ऊबकर तटस्थ होने की बात करता है: उसे क्यों लगता है कि वह चौराहे पर उकता कर 'सब्जी की डलिया में घुस गया है, अथवा 'उसने आदमी कहलाने की धुन में, पीछे एक चीज़ हिलने वाली लगा ली है।' क्यों किसी को 'रोशनी की आत्मा' मरी मिलती है? 'शब्दों के मलबे में, अर्थ की कराह को, टेप करने की असफल कोशिश करता हुआ.....' देवता शहर की किताब में दबकर मर जाने की बात क्यों करता है। श्रीकान्त क्यों चिल्लाकर कहता है कि 'मैं था जो जाकर कहीं और फूट पड़ा हूँ?' किसलिए जगदीश चतुर्वेदी कहता है कि 'उसने एक नगर को कत्ल कर दिया है?' गिरिजा कुमार माथुर अपनी घोंघा शीर्षक कविता में किस बासीपन से मुक्त होना चाहते हैं। क्यों माचवे जहर हलाहल पीने की बात करते हैं? शायद इन सबकी दृष्टि में क्रास-फेडिंग (एक दूसरे दृष्टिकोण से विषय का स्पष्टीकरण) है जिसमें वैयक्तिक विविधता होतेहुए भी एक अलग 'थ्रो' फेंकाव है। इसके 'स्ट्रोक्स' कुशल प्रयत्न नयी कविता से एकदम पृथक हैं। प्रकारान्तर में अकविता की भीड़ और गमक सन्दर्भों की वास्तविक कचोंट हैं। अकविता आज का उपयुक्त 'मूड' मनोदशा है। अपने पीछे की कविता से पार्थक्य इसमें यों है कि 'तारसप्तक' स्तर की तासीर जो कुछ समय तक जेरिंग कर्णकटु प्रभाव देती रही और बाद में मन्द्र-सप्तक में आकर निरर्थक कलाबाजियां दिखाने लगी, वह अकविता में आकर अनिबद्ध और निस्संग हो गई। उसका 'ठेका' बदल गया। इसलिए अधिकतर नयापन यकायक दुर्बोध और बेढंगा लगता है।

अकविता स्थिति-परक संतुलित स्तर की कविता है। हारर या मृत्यु उसके रचयिता को विक्षुब्ध नहीं करते। अव्यवस्था, विसंगति, मूल्यहीनता, विरोधाभास और आदर्शों का अकाल उसे अब संवेदनशील और करुण नहीं बनाते। वह इस

बात को जान चुका है कि जीवन दर्शन की मान्यताओं का कोई अर्थ नहीं रह गया है। विज्ञान की मर्यादाएं टूट रही हैं। ध्वंस का आग्रह रक्त में पल रहा है। राजनीति के दृढ़ सिद्धान्तों की धज्जियां उड़ती हैं और पूरी सावधानी लेने पर भी वह सब उटपटांग घटित होता है, जिससे आंदोलित होना व्यर्थ लगता है। ये समूची स्थितियां बेहद अव्यवस्थित हैं और अनेक टेढ़ी-तिरछी रेखाओं में एक दूसरे को काटती हैं। इन सबकी चौखट तड़क गई है। चौखट में बद्ध चित्र, स्वयं चौखट उठाये अपना नहीं चौखट का ही प्रदर्शन कर रहा है। अतः बुद्धिजीवी की प्रज्ञा खंडित और सन्दर्भहीन है। हर व्यक्ति अपने वृत्त में अनुपयुक्त मिसफिट है। मिसफिट होना उसकी नियति हो गयी है। साहित्यिक का व्यतिक्रम भटकाव में बद्ध है। विकास का बृहत्तर आग्रह उसकी जीवन-व्यवस्था में सिर्फ सम्भावना हीन रहा है। हिन्दी कविता की स्थिति तो और भी अजीब है कि इसमें कई पीढ़ियां एक साथ व्यस्त हैं। उनके प्रतिबद्ध-वृत्त एकदूसरे को काटते हुए भी अलग हैं और कुछ मिलाकर वे ऐसा पैटर्न बनाते हैं कि यकायक किसी तरह निर्णय देना महज कुहासे में देखने की कोशिश करना है। राजनीति जब भाषा का भाग्य निर्णय करती है और प्रतिभा पदों के मायावी ब्रह्मराक्षस के समक्ष अवनत होकर वह सब कुछ करने लगती है, जो अपना नहीं होता है, तब कविता का परिभाषित सत्य उस रगड़ में झूठा हो जाता है। क्योंकि तब कवि का व्यक्तित्व, अगर वह दोहरी जिन्दगी का आदी नहीं है तो, अव्यवस्थित तंत्र में उसी मानसिक भूमि पर जीने का समझौता करता है, जिस पर कई पीढ़ियां एक साथ जीती हैं। यह सच है कि वह अपने पूर्ववर्ती अथवा किन्हीं अन्य स्तर के समकालीन कवियों की तरह मात्र कविताएं लिखकर उम्र गुज़ार देना नहीं चाहता। चाहे उसके समक्ष बारम्बार सामाजिक आग्रहों के खोखले वृत्त घूम जाते हों अथवा मजबूरियों की गहरी दरारों और उदासी में लटके हुए पंगु ताजमहल की खामोशियां नंगी आवाजों के धक्कों से टूट जाती हों—वह फिर भी इस बात को गहराई से समझता है कि उसे एक नहीं अनेक गलित पीढ़ियों के साथ समझौता करना होगा--उसे झुकना होगा। बगैर झुके आनेवाले कल के प्रति उसका आज भी संदिग्ध हो जाएगा या फिर उसे ऐसी जगह फेंक दिया जाएगा जहां से उसकी ईमानदारी की गंध का एक अंश भी बाहर आने से वंचित रहेगा। तब शायद वह लिखना बंद कर देगा, और कुछ लिखेगा भी तो दो दिशाओं में उसकी प्रतिक्रिया होगी : एक में अपनी कविता के मुहावरों को अपनी उपलब्धि मानकर आगामी स्थितियों से इन्कार करेगा और दूसरे में कविता को खुद एक हथियार बना लेगा, जिसकी कलें उसकी अपनी

ईजाद होगी। दूसरी दिशा अकविता की दिशा होगी, क्योंकि वह तरन्नुम और मौज की कविता नहीं होगी। वह न क्षण की अनुभूति कही जा सकेगी, न लघुमानव की अभिव्यंजना। बल्कि वह सहज होगी और इतनी सहज कि अपने कथ्य को भावुकता रहित होकर, संपूर्ण चेतना से एक निजी आकार में बदल देगी। उसका कथ्य ही उसका शिल्प होगा। भाषा की गत्यात्मकता निरपेक्ष सहजता से जो उपलब्ध करेगी वही उसका अपना रूप होगा। उसकी सहजता से जो दृष्टि वास्तविक सत्य के हित में अतर्क्य तथ्यों के प्रति कभी-कभी शब्देतर भी हो सकती है: तब उसे आदमी को शक्ल में बन्दर या गधे का चेहरा नज़र आये तो अतिरेक नहीं होगा, बल्कि उसका ऐसा अनुभव वास्तविक सत्य की उपलब्धि होगी। वह पिकासो की तरह वस्तुओं को उनके बाह्य रूपों से मुक्त करेगी और वह सब देखेगी जिन्हें माइक्रोस्कोप (सूक्ष्मदर्शी) और टेलीस्कोप (दूरवीक्षक) आंखें नहीं देखतीं। यों तो यह सिद्ध कर पाना ही कठिन है कि जिस वस्तुजगत को हम देखते हैं उसे वास्तव में हम देख भी रहे हैं या नहीं? क्योंकि बहुत कुछ नंगा है, और भाषा बौनी है।

"गद्य जीवन संग्रह की भाषा है" कभी निराला ने कहा था। अकविता उसी गद्य की ओर पहुंच रही है जिसमें आज की मनःस्थिति उपयुक्त बैठती है। इस संदर्भ में विरूप को सुन्दर के साथ स्वीकार करने का साहस वास्तविकता को आस्था प्रदान करना है। कविता में 'फिनिश' कोई चीज़ नहीं होती। कुछ पंक्तियों को लिखने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर रचना-रत बुद्धि आखिर कैसे पहुँच जाती है कि उनमें एक कवितावद्ध है? अक्सर अनघढ़त्व में भी पूर्व कविता का बोध होता है। चित्रक-संरचना में भी यही अनुभूति प्रयोजनीय है। लेकिन दोनों विधाओं में आंतरिक चेतना हर स्थिति में आवश्यक है। उसके बिना विरूप को भाषा नहीं दी जा सकती। एज़रा पाउंड ने एक बार कहा था कि कला के साथ जब कोई गलत बात हो रही हो तो मात्र कलाओं तक ही सीमित नहीं होती। क्योंकि सौन्दर्य बहुत मुश्किल चीज़ है, उसे सन्दर्भ हीन नहीं रखा जा सकता।… विसंगति ओरांग-उटांग की उपलब्धि है। सन्दर्भ रहित होकर उसकी उद्‌भावना सम्भव नहीं। इसलिए उसकी एक अलग 'हारमनी' (सामंजस्य) होती है। उसका कोई व्याकरण नहीं है। उसका कोई आदर्श नहीं है। उसका कोई मसीह नहीं है।

अकविता की नियति अकेलेपन की नियति नहीं, बल्कि विकृत-संबंधों की नियति है। लेकिन इस नियति को व्यक्ति बहुत उपेक्षा से ग्रहण करता है, क्योंकि उसका होना ही उलझावों के प्रति उसकी स्वीकृति है। संबन्धों की नियति जिन जटिलताओं को उत्पन्न करती है। उन्हे बृहत्तर परिवेश में अर्थहीन विरूप

कविताओं और विविध प्रयोगों तक पूर्ण निस्संगति से प्रवर्तित किया जा सकना असम्भव नहीं। अकविता इन विसंगतियों को उन मुहावरों में ग्रहण करती है जो अपेक्षाकृत बहुत साफ और गैर रोमैण्टिक होते हैं। बहुत ही चुके हुए, एक शब्द का प्रयोग करते हुए कहा जाए तो 'परिवेश' ने कविता की भाषा को वस्त्रहीन कर दिया है। लेकिन उसका अनावृत होना, साफ और वास्तविक होना भी एक दूसरो कठिनाई का निमित्त बनता है जो पाठक के लिए अपरिचित है। कितनी ही सरल और सीधी व्यंजना हो, उसके भीतर की अतर्क्य संगति यकायक पकड़ में नहीं आती।

यह स्थिति न भटकाव की स्थिति है, और न ऊलजलूल बीट रोमैण्टिक की। इसका न क्षुधित पीढ़ी से सम्बन्ध है, न कामू की एबसर्ड (तर्कहीन) निरर्थकता से। यह तो कच्चे आइने में नयी कविता द्वारा देखे गये व्यक्ति को उसकी वास्तविकताओं में देखने का एक सिलसिला है।

नयी कविता दुर्भाग्य से 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक सवेदन' के बीच झूलती रही और यह फैसला नहीं कर पायी की उसकी सही दिशा क्या है ? अकविता के लिए गुदगुदी संवेदना और भावुकता कच्ची समझ की सूचक है। प्रौढ़ मन:स्थिति अपनी पूर्ण चेतना के साथ कविता करती है। भीतर द्रवित होतो लज्जालू भावप्रवणता ऐसी छलना है जिसे एक प्रकार का खम देने के प्रयत्न में नयी कविता शिल्प के चक्कर में पड़ी रही। अकविता न खम बेदना देना चाहती है, न शिल्प की गुलाम बनना। इसे शरारत पूर्ण सह-संयोजन भी नहीं कहा जा सकता। इसके द्वारा शब्द और अर्थ को सम्पूर्ण सत्ता का कोई निरादर भो नहीं किया जा रहा है। इसका आशय न अच्छी कविता होने के बोध से है, न बुरी कविता के प्रवर्तन से। क्योंकि अच्छी या बुरी कविता एक विभ्रम है। रचना मात्र कविता होने से न अच्छी होती है, न अकविता होने से बुरी। अकविता केवल पिछली कविता की सौन्दर्यपरक औपचारिक अभिव्यंजना और शब्दों की रूढ़ मर्यादाओं के प्रति नकारात्मक एहसास है।

समूची चेतना के स्तर पर अकविता का अभिप्राय अनिबद्ध होना है। ओढ़े हुए संस्कारों वाले शब्द उसे अपर्याप्त लगते हैं। ज़ाहिर है, हमारी भाषा अधूरी है। जिस भाषा की पूर्णता का दावा किया जाता है, वह कविता की भाषा नहीं, स्तरीय-सम्बन्धों की भाषा है। उसमें औपचारिकता का निर्वाह किया जा सकता है, कविता नहीं की जा सकती। ———

कहते हैं नभ मुस्काता है !

—मुल्क राज कांसरा

कहते हैं नभ मुस्काता है !
अगिणित स्वर्ण रश्मियों के मिस
नव संदेश सुना जाता है,

नीले सीमाहीन गगन के किस कोने से हास है फूटा,
हमने तो इस शून्य निशा में क्षण क्षण झरता शाप ही लूटा,
कब नूतन स्मित फूटा इस से, कब वरदान संजो लाता है ?
कहते हैं नभ मुस्काता है !

तारे टूक टूक हो जाते चन्द्रहास में रोदन के कण,
कितने अन्तः स्पन्दन टूटे, कितने फूटे अन्तर के व्रण,
रजनी का आंचल भीगा है, नभ अश्रुकण बरसाता है,
कहते हैं नभ मुस्काता है !

किन वरदानों के टूटे शव से क्रन्दन की धाराएं फूटीं,
किन रोचक स्वप्नों के अन्तर से खण्डित उल्काएं टूटी ?
कब ताण्डव नर्तन के मिस से नभ अपना मन बहलाता है !
कहते हैं नभ मुस्काता है !

जितने नभ से फूल संजोए सब अन्तर में शूल लिए थे,
अन्तरिक्ष में जितने कम्पन मूक तड़ित सा शोध पिए थे,
मैं न समझ पाया अँधड़ यह स्वर्णिम भाग्य जो झुठलाता है,
कहते हैं नभ मुस्काता है !

अब न मुखर होगा वीणा स्वर, टूटे तार न झंकृत होंगे,
क्षत विक्षत अँगुलियां मेरी, गीतों के स्वर विकृत होंगे,
मसला धूसरित रूप कुसुम का किस के मन को बहलाता है ?
कहते हैं नभ मुस्काता है !

देखो परदे के झिलमिल से झांक रही है कोई छाया,
जिसके अधरों के कम्पन से फूट रहा था गीत पराया,
विस्मृतियों के ऊबड़ खाबड़ में मानों पथ दर्शाता है !
कहते हैं नभ मुस्काता है !

———

अवमूल्यन

—नारायण उपाध्याय

वे अति प्राचीन
सोने चांदी और तांबे के सिक्के
अब चलते नहीं हैं बाजार में
तुम्हें मोह है
इसीसे करते हो पूजा
और विपद आने पर
गलाकर बेचकर देते हो
धातु के भाव
यह सत्य छिपा नहीं है
तुम्हारे बेटे से
इसीसे सेवा, सचाई और
त्याग के पुराने सिक्कों से
उसे नहीं है लगाव—
और जिन महापुरुषों के साथ
तुम जोड़ते हो उन्हें
उसके लिये मात्र अलबम हैं वे
पुराने डाक टिकिटों से
तुम जिसे कहते हो बगावत
नयी पीढ़ी की
वह है अस्वीकृति
घिसे हुए सिक्कों की
गिरे हुए मूल्यों की
और उनका आक्रोश है खीज
नये मूल्यों के अन्वेषण की

——

प्राण–विहग

—जीवन महता

सत्य फिरता नग्न लेकिन
झूठ के शत आवरण है,
चेतना चिर शून्य लेकिन,
छद्ममय सब आचरण है,
अंकुराती ज़िन्दगी का
मृत्यु करती नित हरण है,
प्रतिक्रियायें सबल लेकिन,
प्रगति का कुंठित चरण है,
कसमसाते बन्ध अविरल
और प्राणों में कुलन है,
झनझनाते तार विह्वल
और सांसों में घुटन है,
छटपटाते प्राण लेकिन
शान्त जीवन की डगर है,
मृत्यु का अभिशाप लेकिन,
चाह जीवन की अमर है,
घन तिमिर विष-जाल वस्तुत
अरुणिमा फिर भी सजल है,
रात्रि के हर अन्त पर नित
मुस्कराता रवि कमल है,
मृत्यु का आघात प्रतिपल
प्राण प्रहरी पर सजग है,
बन्द हैं सब रन्ध्र लेकिन
मुक्त प्राणों का विहग है।

———

आंसू

—जानकी नाथ कौल 'कमल'

अ ! हा ! आज उमड़ती नदिया
कैसा स्रोत बहाती !
बहते बहते जीवन तल पर,
शीतल ताल बजाती।
हृदयस्थल से बहता झरना
अश्रु-नदी में गिरता।
गिर कर जीवन के आञ्चल को,
किन ध्वनियों से भरता ?
मैं तो अंधियारी कुटि में
जीवन-संग थी रोती।
रो कर आंखें खोलीं देखा
बिखर पड़े हैं मोती।
ये तो आंसू-बूंद नहीं हैं,
सुख-माला के मोती।
जिनका अनुपम हार पहिन कर,
मैं हूं सुख से सोती।

——

गीत

—ईश्वर नाथ अग्रवाल

महके अंगना हरश्रृंगार
फूला आज तुम्हारा प्यार
महके अंगना हरश्रृंगार।
ढलकी ओस, नहाई धूप
छलकीं अखियां, निखरा रूप
किसने गूंथी माला मन की
किसका टूटा प्यार
महके अंगना हरश्रृंगार।
सिमटी छाया, उभरी जूही
बगिया जले पलास
मन का सूरज, मन में ढलता
कुहरा है उस पार
महके अंगना हरश्रृंगार।
रजनीगंधा सहमी सहमी
रस की करे फुहार
तुम तो दूर बसे निर्मोही
फूल बने अंगार
महके अंगना हरश्रृंगार।

——

आंतरिक मामला-एक प्रतिक्रिया

—विष्णु सक्सेना

कितना सहज होता है
यह कहना
कि यह हमारा आंतरिक मामला है,
हमने अपने ही घर को
टूटने से बचाने के लिए
उसके एक हिस्से में स्वयं ही
आग लगाई है।
आग—
जो पूरे मकान को जला सकती है,
आग—
जो पूरे मोहल्ले को अपनी लपेट में
ले सकती है,
और आग—
जो फैलते फैलते पूरे शहर को
हजम कर सकती है।
उस आग को देखकर भी
पूरा मोहल्ला
खामोश है
और सम्पूर्ण शहर मौन साधे है।

———

भविष्य

—रमा बडयाल

जीवन का संघर्ष जगत से
वढ़ता ही जाता है,

निज अतीत का दृश्य चित्तपर
अंकित ही रहता है।

निठुर सत्य का रंग चित्त पर
चढ़ता ही जाता है।

हृदय न जाने क्यों सदैव ही—
शंकित सा रहता है।

अनायास ही अभिलाषायें
मिटती हैं बेचारी।

अन्धकार-मय ही भविष्य का
चित्र ..जर आता है।

आशा भी करती रहती है
जाने की तैयारी।

धीरे-धीरे भाग्य विभाकर
अस्त हुआ जाता है।

———

पत्र-मंच

❀ साहित्याचार्य ह. रा. दिवेकर एम. ए. डी. लिट् (पूना)

शीराज़ा (वर्ष ७, अंक १) प्राप्त हुआ।

इतना सुन्दर अंक निकालने पर अभिनन्दन। ग्रन्थ खोलकर इस छोर से उस छोर तक पढ़ा : सभी लेख वाचनीय हैं।

इतना सुन्दर अंक भेजने के लिये धन्यवाद। आपके सम्पादन में ऐसा ही अंक निकलना चाहिये।

❀ डा. भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता, हिसार (हरियाणा)

'शीराज़ा' हिन्दी पत्रिका मिली। प्रस्तुत पत्रिका को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। सुदूर प्रदेश में भी राष्ट्रभाषा के माध्यम से डुग्गर के साहित्यकारों की रचनाएं प्रकाश में आ रही हैं इससे राष्ट्रभाषा का भण्डार तो भरता ही है, साथ ही राष्ट्र की भावात्मक एकता भी प्रतिपादित होती है।

सम्पादकीय के अन्तर्गत भारतीय भाषाओं के लिए सांझी लिपि अपनाने का सुझाव प्रस्तावित कर भाषा-समस्या के निदान के हेतु बहुत बड़ा समाधान आपने प्रस्तुत किया है।

❀ प्रो. चमन लाल सपरू, श्रीनगर।

'शीराज़ा' का नवीनतम अंक यथासमय प्राप्त हुआ। प्रस्तुत अंक के सम्पादकीय पढ़ने से यह आशा बन्धी कि शीराज़ा वास्तव में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का प्रतीक बनेगा।

❀ श्री फूल चन्द 'मानव', चण्डीगढ़।

'शीराज़ा' का जून अंक पढ़ने को मिला और यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि अब इसका प्रकाशन त्रैमासिक चलेगा। ·· जिज्ञासा और सेवा, भारतीय भाषाओं के लिए सांझी लिपि, डोगरी लोक साहित्य सेमिनार, कला मूर्तियों की चोरी एवं बंगला देश की समस्या के बारे में सम्पादकीय विचार सराहनीय लगे। मनसाराम चंचल, भुवनपति शर्मा, रैणा सांख्यधर के निबंध, सत्यवती मलिक, प्रशान्त एवं कांता शर्मा की गद्य रचनाएं खासकर पसंद आई हैं।

(Dr. R. L. Shant)
Professor of Hindi
Bemina College Srinagar